॥ जय माँ ॥

श्रीश्री आनन्दमयी माँ की प्राकट्यभूमि लीलाभूमि बांग्लादेश की यात्रा

- उत्तरा

श्रीश्री आनन्दमयी माँ की
प्राकट्यभूमि
लीलाभूमि
बांग्लादेश की यात्रा

– उत्तरा

॥ श्रीपादपीठं नमामि ॥

मातृचरणों में समर्पित

॥ ॐ भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॐ ॥

ॐ प्रातर्नमामि जननि तव पादयुग्मं
संसारतापभयरोगहरं सुगौरम् ।
मुक्तिप्रदं सुखकरं शुभदं सदैव
शरणागतस्य मम श्रीशरणं हृदिस्थम् ॥

आदरणीय स्वामी भास्करानन्दजी के आशीर्वचन

बांग्लादेश में श्रीश्रीमाँ के कई भक्त श्रीश्रीमाँ के जन्मस्थान एवं सिद्धेश्वरी आदि जा चुके हैं, किन्तु आज तक उनके लिये किसीने गुजराती में (तथा हिन्दी में) पुस्तक लिखा नहीं है। अतः उत्तरा का यह प्रयास स्तुत्य है, और अन्य भक्तों को बहुत सारी जानकारी प्राप्त होगी ऐसी आशा करता हूँ। इस तरह की पुस्तिका का प्रकाशन अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि माँ के कई लीलास्थान आजकल बांग्लादेश में लुप्त होते जा रहे हैं।

मंगल कामना सह
स्वामी भास्करानन्द

आषाढ़ कृष्ण एकादशी
कल्याणवन आश्रम
(देहरादून)

अनुक्रमणिका

(१)

आगड़पाड़ा आश्रम (कोलकाता)

७-५-०७ वैशाख कृष्ण पंचमी

परम पूजनीया प्रातःस्मरणीया पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी श्रीश्री आनन्दमयी माँ की कृपा से हम श्रीश्रीमाँ की आविर्भावस्थली लीलाभूमि बांग्लादेश की यात्रा अत्यन्त सरलतापूर्वक कर सके। सन् १८९६ से १९३२ तक माँ बांग्लादेश में लम्बे समय तक रहीं। वहाँ से १९३२ में सर्वप्रथम बांग्लादेश की सीमा लाँघकर माँ देहरादून के रायपुर नामक छोटे-से गाँव में आने के पश्चात् भारत-भ्रमण करते हुए बीच बीच में बांग्लादेश जाती थीं।

हम ८ यात्री बंगभूमि की यात्रा में शामिल हुए थे। हम भारत के विभिन्न प्रदेशों के, विभिन्न कार्यक्षेत्रोंवाले, विभिन्न भाषाभाषी, विभिन्न उम्र के और विभिन्न व्यक्तित्ववाले लोग थे, फिर भी हम सभी माँ के आश्रित होने के नाते एक ही भावापन्न थे। चंडीगढ़ से श्री तरुण घाई, दिल्ली से अमला तथा श्री रजत नारायण, मुंबाई से नीता महेता, बड़ौदा से श्री नवीनभाई अस्ती, सूरत से श्री तपेश कापड़िया, अहमदाबाद से ज्योतिबहन वत्सराज और मैं – इस प्रकार हम आठों व्यक्ति मातृपरिवार के ही थे, अतः सभी का उद्देश्य ऐसा एकमुखी था कि माँ के श्रीचरणों से पवित्र हुए अधिकाधिक स्थानों का दर्शन करना है। यात्रा का क्रम था :

कसबा, खेओड़ा, चालना, विद्याकूट, अष्टग्राम, बाजितपुर, सुलतानपुर, खेओड़ा, ढाका (रमना, शाहबाग, सिद्धेश्वरी)।

श्रीश्रीमाँ के शुभ-आविर्भाव-पूजन के बाद कनखल में प्रातःकाल सभी भक्तों ने बारीबारी से समाधि-मंदिर में भीतर जाकर स्पर्श कर के प्रणाम किया, पुष्पांजलि अर्पण की। शाम को अखंड नामकीर्तन का अधिवास हुआ। दूसरे दिन ७-५-०७ की सुबह हमने यात्रा का प्रारंभ किया। माँ के मंदिर में प्रणाम कर के करीब ५.३० बजे हमने दिल्ली की ओर प्रयाण किया। मैं, अमला, रजतभाई और तपेशभाई टेक्सी में दिल्ली गए और वहाँ से प्लेन में कोलकाता आगड़पाड़ा आश्रम पहुँचे। चार और यात्री हमें कोलकाता में मिलनेवाले थे।

आश्रम के सेक्रेटरी श्री दिलीप चेटर्जी ने प्रेम से हमारा स्वागत किया। आश्रम बिलकुल गंगा के किनारे पर है, घाट भी बना हुआ है जहाँ पर स्नान किया जा सकता है, परंतु जल का प्रवाह बड़ा ही तीव्र है, जल गहरा है और समुद्र की तरंगो की तरह लहरें आती रहती हैं। स्नान करने का साहस नहीं हुआ। घाट की सीढ़ियों की ओर जाते हुए पहले एक छोटा-सा मंदिर देखा, जिसके बाहर लिखा हुआ था कि श्रीश्रीमाँ ने देखा था कि श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीनित्यानंन्द प्रभु जब पानिहाटी से कामारहाटी जाते थे तब बीच में इसी स्थान पर विश्राम करते थे।

सामने ही माँ का सुन्दर घर है। ऊपर एक विशाल स्वच्छ होल में माँ की तसवीर रखकर पूजा का स्थान बनाया गया है। भीतरवाले कक्ष में माँ की चौकी तथा पादुकाएँ हैं। उससे ऊपर छत में भी माँ का कक्ष है, जहाँ पर माँ की चौकी, कुर्सी तथा पादुकाएँ हैं। काँच की अलमारी में माँ के कुछ वस्त्र तथा बरतन संग्रहीत हैं।

आश्रम के विशाल मंदिर में बीच में माँ का मंदिर और बाईं ओर से क्रमशः दिदिमाँ का एवं भोलानाथजी की मूर्ति सहित शिवमंदिर है। माँ की दाहिनी ओर राधाकृष्ण का मंदिर है। मंदिर से पूर्व की ओर एक तालाब है, जिसके सामने ध्यानमंदिर है। उसमें माँ की मूर्ति प्रतिष्ठित है। आगड़पाड़ा आश्रम की विस्तृत भूमि सुगन्धित पुष्पों के वृक्षों से भरपूर है। सेक्रेटरी दिलीपदा और आश्रम के सभी कार्यकरों तथा सेवकों का व्यवहार स्नेहयुक्त और नम्रतापूर्ण है।

दूसरे दिन नीता, तरुणभाई, नवीनभाई और ज्योतिबहन शाम के प्लेन से आ पहुँचे। ९-५-०७ की सुबह हमें आगरतला के लिये प्रस्थान करना है।

(२)

आगरतला आश्रम (त्रिपुरा)

९-५-०७ वैशाख कृष्ण सप्तमी

हमारा प्लेन गौहाटी होकर लम्बे रास्ते से जा रहा था, इसलिये करीब डेढ़ घंटे बाद हम आगरतला पहुँचे। तब वहाँ बारिश हो जाने के कारण काफी ठंड थी। माँ के आगरतला आश्रम के सेक्रेटरी श्री राय तीन बड़ी गाड़ियों के साथ हमें लेने आये थे। करीब आधे घंटे के अंदर हम आश्रम पर आ गये। आश्रम शहर के बाहर है। सामने बड़ा तालाब है, जिस की दाहिनी ओर राजप्रासाद है। श्वेत रंग का राजमहल विशाल एवं सुंदर दिखाई देता है। इस समय वहाँ सरकारी कार्यालय है। आगरतला त्रिपुरा राज्य की राजधानी है, किन्तु बांग्लादेश होने से पहले यह पूर्व पाकिस्तान था, और उस से भी पहले अविभाजित भारत के पूर्व बंगाल का त्रिपुरा राज्य था। माँ का जन्मस्थान खेओड़ा इसी त्रिपुरा के अंतर्गत था। त्रिपुरा राज्य की अधिष्ठात्री त्रिपुरसुन्दरीदेवी के क्षेत्र में महात्रिपुरसुन्दरीरूपा श्रीश्रीआनन्दमयी माँ का आविर्भाव हुआ। यह ईश्वरीय अनुग्रह है, कोई co-incidence नहीं !

विवाह के समय श्रीरमणीमोहन चक्रवर्ती (भोलानाथजी) के लिये हाथी पर सवार होने के लिये हाथी का प्रबन्ध करने के लिये माँ के पिताजी दादामहाशय सन् १९०९ में आगरतला आए थे। १९८२ के जन्मोत्सव के पूर्व माँ अंतिम बार आगरतला आ कर, फिर यहाँ से हरिद्वार और तत्पश्चात् देहरादून गईं। माँ का 'खयाल' जिस भूमि पर आखिर तक रहा (देहरादून जाने से पहले) वह त्रिपुरा ही था।

त्रिपुरा राजपरिवार का ही एक मन्दिर राजमहल के प्रांगण में था। उसी मन्दिर को, आसपास की कुछ भूमिसहित महाराजा ने माँ के चरणों में अर्पण किया है। वहीं पर आश्रम बना। उस मन्दिर में शिवलिंग स्थापित है। पहले एक मूर्ति को ढक कर रखा गया था, उसे लोग काली की मूर्ति कहते थे। एक बार माँ ने आश्रम के श्री पानु ब्रह्मचारी के मुख से बाहर लाने के लिये ही मानो पूछा कि किसकी मूर्ति है ? तब पानुदा ने कहा कि शिवजी के वाम भाग में पार्वती विराजमान् है। बंगाल के सुप्रसिद्ध कालीभक्त कवि रामप्रसाद ने अपने श्यामागान में गाया है कि महाकाल के अंक में विराजित होने के कारण तू महाकाली है। पार्वती को इसी कारण महाकाली कहा है। अब वह मन्दिर उमा–महेश्वर–मंदिर के नाम से जाना जाता है। महाराजा ने मंदिरसहित भूमि को आश्रम बनाने के हेतु माँ के चरणों में अर्पित किया था।

मंदिर के पास ही में माँ का निवासस्थान है, जहाँ सरस्वती की मूर्ति है। सामने छोटा–सा तालाब है। मंदिर लाल रंग का और सुन्दर है। पार्श्व में विद्यालय है। माँ का जब अन्तिम बार त्रिपुरा में आगमन हुआ, तब माँ के साथ सरस्वती की मूर्ति और एक शिवलिंग था। आश्रम से विदा होने के समय माँ के मुख से निकला, "इस शरीर को माँ सरस्वती को दे दिया" – अर्थात् सरस्वती की जो मूर्ति प्रतिष्ठित है वह पूर्णतया जाग्रत एवं शक्तिसंपन्न है।

आश्रम के सेक्रेटरी राय ने खुद हमारे सामने खड़े रह कर हमें बड़े भावपूर्वक भोजन कराया। बहुत देरी हो चुकी थी और भूख न होते हुए भी हमने भोजन किया। होटेल की व्यवस्था भी उन्होंने

की थी, क्योंकि आश्रम में बाहरवालों को रहने के लिये कमरों का प्रबन्ध नहीं है। होटेल में अपने अपने कमरों में जा कर तरोताजा होने के बाद एकाएक यह निश्चित किया गया कि कसबा कालीबाड़ी कल सवेरे जाने का कार्यक्रम है, फिर भी इसी समय चला जाय।

*

कसबा कालीबाड़ी (कालीमन्दिर)

माँ के आविर्भाव के पूर्व माँ की ठाकुरमा (पितामही) ६ मील पैदल चलकर खेओड़ा से कसबा गई थीं। आने-जाने के करीब १२ मील वे अकेली चली थीं, जब जंगल में हो कर जाना पड़ता था, और मन्दिर भी बहुत एकान्त स्थान में रहा होगा। मन्दिर शायद छोटे-से टीले पर होगा, क्योंकि इस समय भी कुछ सीढ़ियाँ चढ़कर जाना पड़ता है। ठाकुरमा ने माँ काली को प्रार्थना करके पुत्र के बजाय पुत्री की कामना की, मुख से अनायास पुत्री शब्द निकल गया। उन्होंने देवी से कहा कि यदि बिपिन के यहाँ पुत्री होगी और जीवित रहेगी, तो उसके विवाह के अवसर पर आपको पूजा चढ़ाउँगी। प्रणाम कर के जब खड़ी हुईं तो स्वयं को आश्चर्य हुआ कि हे हरि! यह मैं क्या माँग बैठी! मैं तो पुत्र-कामना से आई थी! माता ने ही मुझे भुलावे में डाल दिया!

श्री बिपिनबिहारी भट्टाचार्य (माँ के पिताजी) की प्रथम सन्तान पुत्री थी जो कि जन्म के बाद अधिक दिन जीवित नहीं रही। इसी कारण उनकी माता की पुत्र सन्तान की कामना थी। कई वर्षों के बाद किसी ने माँ से पूछा कि "माँ, आप के प्राकट्य के पीछे यही कारण है?" उत्तर में माँ ने कहा, "तुम को यही एक कारण लगता है?"

माँ ने तो कहा ही है, "यह शरीर भावमय है, तुमने माँगा और पाया।" और "अपने काम के लिये इस शरीर को तुम्हीं ले आये हो।"

भारत के विभाजन के समय कसबा के दो हिस्से हो गये। एक हिस्सा भारत में आ गया और अन्य हिस्सा पूर्व पाकिस्तान में गया, जो अब बांग्लादेश है। बीच में तार बँधा हुआ है। किन्तु कसबा का काली मन्दिर भारत में ही रहा है आगरतला में।

हम लोग जब कसबा जाने के लिये निकले तब अँधेरा हो चुका था। आश्रम के राय भी हमारे साथ चले। दो कारों में बँटकर हमने आगरतला से कसबा की ओर प्रस्थान किया। १६ कि.मी. तक हाइवे पर जाने के बाद दाहिनी ओर कालीबाड़ी का बोर्ड दिखाई दिया। वहीं से मुड़कर और १५ कि.मी. जंगल से होकर एक सँकरे मार्ग पर जाने लगे। बाहर गाढ़ अन्धकार था। कृष्णपक्ष की सप्तमी तिथि थी। मन्दिर के पास पहुँचे। आकाश में अनगिनत तारे झिलमिला रहे थे। बाहर लाइट नहीं थी। हमारे इर्द गिर्द वहाँ के काफ़ी लोग जमा हो गये। उन लोगों से पता चला कि मन्दिर तो बंद हो चुका था, परंतु ऐसे ऐतिहासिक एवं अत्यन्त पवित्र स्थान में आकर बिना प्रणाम किये लौटने की किसी की इच्छा नहीं थी। दूसरे दिन सुबह तो पुनः आने की बात थी ही, फिर भी सब मन्दिर की ओर चल पड़े। गाँव के किसी लड़के के पास टॉर्च थी जिसके प्रकाश से हम सभी तथा गाँव के लोग एकसाथ चलकर मन्दिरद्वार तक पहुँचे। बंद द्वार के सामने माथा टेक कर सब ने प्रणाम किया। रात्रि के अन्धकार और नीरवता में कुछ देर तक चुपचाप खड़े रहे, फिर आगरतला लौट गए।

* * *

(३)

त्रिपुरसुन्दरी मन्दिर

१०-५-०७ **वैशाख कृष्ण अष्टमी**

देवी उपासना में कृष्ण पक्ष की अष्टमी और चतुर्दशी तिथियों का विशेष महत्त्व है, और आज कृष्ण अष्टमी ही है ! शिवभार्या सती के दक्षिण चरण का अंगूठा यहीं पर गिरा था, अतः ५१ शक्तिपीठों में से यह एक शक्तिपीठ है । आदि शंकराचार्य की इष्टदेवता महात्रिपुरसुन्दरी हैं, अतः शंकराचार्य के चारों मठों में उनकी पूजा का विधान है । शंकराचार्य ने त्रिपुरसुन्दरी-स्तोत्र की भी रचना की है, जिसमें देवी के प्रिय कदम्ब पुष्प का बारबार उल्लेख है । "कदम्बवनचारिणीम्" "कदम्बवनवासिनीम्" "कदम्बवनमध्यगाम्" जैसे देवी के विशेषण हैं, और "जपाकुसुमभासुरां जपविधौ स्मराम्यम्बिकाम्" शब्दों से जवा के पुष्पों जैसी रक्तिम आभायुक्त देवी को अम्बिका याने माता कहा है । प्रायः समूचे भारत में महाशक्ति के सर्व रूप माँ अम्बा के रूप हैं, उसी तरह केवल बंगाल में महाशक्ति का नाम माँ काली है । बंगाल में दशमहाविद्या को भी काली का ही रूप माना जाता हैं । इसीलिये इस मन्दिर में भी विग्रह काली का है । त्रिपुरा राज्य का नाम भी इसी देवी के कारण है जो कि समस्त त्रिपुरा की अधिष्ठात्री देवी त्रिपुरसुन्दरी है । वही "त्रिलोचनकुटुम्बिनी" है, महादेव की पत्नी सती है ।

जब हम सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँचे तब मन्दिर बंद था, पर कुछ ही देर में खुलनेवाला था । जपाकुसुम की मालाएँ खरीदकर

मंदिर के द्वार के समीप बैठकर हम में से कुछ ने अपने अपने पाठ किये, किसी किसीने अगरबत्ती जलाकर माता के उद्देश्य से बंध द्वार के सामने घुमाकर आरती की। हमारे सिवा और जो दर्शनार्थी थे वे सभी शांतिपूर्वक लाइन बनाकर खड़े थे। द्वार खुलने पर भी जरा-सी भी चंचलता नहीं, धक्कमधक्का नहीं, अधैर्य नहीं ! सबको शांति से दर्शन-प्रणाम का मौका मिला, परंतु बाहर से ही। मंदिर के भीतर पूजारी के सिवा सब के लिये प्रवेश-निषेध है। इसलिये पूजारी ने माला अर्पण करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के नाम व गोत्र पूछकर, उसका उच्चारण कर के माल्यार्पण किया।

पूजारी को कदाचित् हम लोगों में सद्वृत्ति दिखाई दी होगी, क्योंकि मन्दिर में देवी के दक्षिण पादांगुष्ठ का जो प्रतीक पूजा में रखा गया है, उसे पात्रसहित हमारे पास मन्दिर के द्वार तक लाकर प्रत्येक को उसका दर्शन कराया, साथ ही यह भी कहा कि कोई स्पर्श न करे। हम प्रणाम कर के अपने सद्भाग्य को सराहते हुए वहाँ से लौटे।

कसबा कालीबाड़ी

आगरतला का यह अत्यन्त प्रसिद्ध मन्दिर है, जिसका कुछ विवरण पहले दिया जा चुका है। त्रिपुरसुन्दरी मन्दिर से यह ८८ कि.मी. है, उसके उपरान्त और १५ कि.मी. जैसा कि आगे बताया गया है, पार कर के हम कालीबाड़ी पहुँचे।

माँ जब अष्टग्राम से विद्याकूट गईं (शायद १९१६ में) तब वहाँ से खेओड़ा हो कर कसबा कालीबाड़ी आई थीं। यहाँ माँ के

श्रीशरीर में भावों का प्राकट्य हुआ था। तत्पश्चात् पुनः १९३७ के जून माह में माँ का खेओड़ा हो कर कसबा आगमन हुआ था। खेओड़ा जाने से पहले भी माँ कसबा हो कर गई थीं। कसबा से माँ ट्रेन में चाँदपुर के लिये रवाना हुई थीं।

मंदिर में जाने के लिये छोटी–सी ढलान चढ़कर कुछ सीढ़ियों से मन्दिर की ओर जाना होता है। कई दूकानें हैं जिनमें भोग चढ़ाने के लिये मिठाइयाँ आदि मिल जाती हैं। दूकानों के बाहर लम्बी लम्बी जवा की मालाएं टँगी हुई थीं।

किसीने एक बार माँ को जवा का पुष्प अर्पण किया था, तब माँ ने उस पुष्प को सबको दिखाते हुए कहा, "शक्ति का फूल।" माँ के श्रीमुख से यह बात ऐसे प्रकट हुई जैसे उस तथ्य को endorse कर दिया हो।

हम मन्दिर के द्वार तक पहुँचे। यहाँ भी भीतर प्रवेश–निषेध था। कई भक्त लोग वहाँ देवी की ओर मुख कर के मौन और शांत होकर वातावरण में तनिक भी खलल न पहुँचाते हुए भूमि पर बैठे थे। वे लोग बड़े ही कौतूहल से हमें देखने लगे। हम तो अत्यन्त भावाभिभूत हो गए थे - आखिर इस स्थान तक पहुँच सके! प्रत्येक की माला पूजारी ने नाम–गोत्र पूछकर ली और देवी को अर्पण कर के फिर हम सबको प्रसादी पुष्प और पेड़े का प्रसाद दिया।

मन्दिर में माँ काली की दाहिनी ओर श्रीश्री आनन्दमयी माँ की तसवीर है।

मन्दिर का स्थान तो प्राचीन है ही, किन्तु मन्दिर का जीर्णोद्धार कर के उसका नवीनीकरण किया गया है। बंगाल की कलात्मकता का उसमें दर्शन होता है।

*

आगरतला से अपना सामान लेकर हम सीधे बोर्डर चेकपोस्ट जाना चाहते थे, पर हमारे आश्रम के श्री राय का यह आग्रह था कि हम आश्रम में भोजन-प्रसाद ले कर जाएं। हमें भी बाद में यह उपयुक्त लगा। होटेल से सामान लेकर तुरंत हम आश्रम पहुँचे, सामान गाड़ियों में ही छोड़कर भोजन करने गए। श्री राय तथा आश्रम कमिटि के एक अन्य सदस्य – दोनों ने सामने खड़े रहकर बड़े प्रेम से हमें भोजन कराया। मन्दिर तो बंद हो चुका था। बाहर ही से हाथ जोड़कर माँ को प्रणाम किया और "जय माँ, जय माँ" कहकर हम बांग्लादेश की सीमा की ओर चल पड़े। चेकपोस्ट का नाम 'आखौड़ा' है। वहाँ पर बांग्लादेश में प्रवेश के बाद श्री पिनाकी भट्टाचार्य हम से दोपहर ३ बजे मिलनेवाले थे। बांग्लादेश का समय भारत से आधा घंटा आगे है, अतः हमें भारत के २.३० बजे उस पार पहुँचना चाहिए।

*

बांग्लादेश में प्रवेश

खेओड़ा और ढाका (सिद्धेश्वरी) की यात्रा तो माँ के कई भक्त प्रतिवर्ष करते हैं। उनके लिये कोलकाता के salt lake से स्पेश्यल वस जाती है। बड़ौदा के नवीनभाई और दिल्ली के रजतभाई दोनों

ही एक बार खेओड़ा तथा ढाका हो आए थे, परंतु अन्य जो-जो स्थान जो कि हमारी itenerary में थे, वे उन्होंने नहीं देखे थे। माँ-विषयक पुस्तकों में, विशेषकर बांग्ला "मायेर कथा" में स्वयं माँ के श्रीमुख से उन उन स्थानों में हुई लीला का विवरण पढ़ने के बाद मेरी तीव्र इच्छा अष्टग्राम, बाजितपुर, शाहबाग जाने की जागृत हुई। अन्य लोग भी शामिल हुए और हमारा ८ व्यक्तियों का ग्रूप बना। कनखल आश्रम में पाटुनदा (S. K. Dutta) रहते हैं। वे सर्वप्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने माँ की लीला के वे स्थान खोज निकाले जिन के अस्तित्त्व के बारे में आज तक किसी ने अन्वेषण नहीं किया था। उन्होंने बांग्लादेश के पुरातन भक्त ब्राह्मनबाड़िया के श्री पिनाकी भट्टाचार्य को साथ में लेकर पुस्तक के साथ मिलाकर उन उन स्थानों को निश्चित किया। उनका यह अन्वेषण बहुत गहरे अध्ययन का परिणाम था और सचमुच ही authentic था। उन्होंने तसवीरें भी खींच लीं, बाद में एक CD बनाई जो अब कनखल आश्रम में उपलब्ध है। बांग्लादेश का हमारा कार्यक्रम बनाने में पाटुन दा की ओर से कई सलाह-सूचन एवं वहाँ के कुछ व्यक्तियों के फोन नंबर भी प्राप्त हुए थे। कनखल आश्रम में ब्रह्मचारिणी चन्दनदी रहती हैं। उन्होंने भी सुलतानपुर के बारे में कुछ जानकारी दी थी। वे माँ की 'मामाबाड़ी' सुलतानपुर में बचपन में रहती थीं, क्योंकि वे दिदिमाँ के भाई की पौत्री हैं। उन्हीं के पिताजी श्री निशिकान्त भट्टाचार्य ने भोलानाथजी के साथ माँ से पूछा था कि आप कौन हैं, जब माँ ने उत्तर दिया था, "पूर्ण ब्रह्म नारायण"।

खेओड़ा इत्यादि, अधिकतर स्थान ब्राह्मनबाड़िया जिले में ही हैं। देश-विभाजन के पूर्व वहाँ मुख्यरूप से ब्राह्मण अधिक मात्रा

में थे, और उनमें भी विशेषकर भट्टाचार्य। इस समय वहाँ ४०% हिन्दु हैं और ६०% मुसलमान। इसी ब्राह्मनबाड़िया जिले के ब्राह्मनबाड़िया शहर में श्री पिनाकी भट्टाचार्य रहते हैं। उनके पिता रायबहादुर ब्राह्मनबाड़िया के जमीनदार थे। उनका पुराने ढंग का विशाल मकान है। सुना कि श्रीश्रीमाँ भी उनके यहाँ एक बार रही थीं। तब माँ गृहस्थों के घरों में जाती थीं। दादा महाशय के चचेरे भाई श्री दीनबन्धु भट्टाचार्य के साथ पिनाकीदा की बुआ का विवाह हुआ था। अब वहाँ की सरकार ने ब्राह्मनबाड़िया का official नाम 'बी. बारिया' कर दिया है, ब्राह्मन शब्द को निकाल दिया है !

हमारा विचार पहले कोलकाता से ढाका जा कर यात्रा आरम्भ करने का था, किन्तु हमारे वाराणसी आश्रम के श्री पानुदा ने हमें समझाया कि सबसे पहले आगरतला जा कर वहीं से पैदल बोर्डर पार करो। कारण ये थे : (१) आगरतला की Domestic Flight होने के कारण टिकट का खर्च आधा हो गया, (२) आगरतला आश्रम देख सके, (३) कसबा कालीबाड़ी के दुर्लभ दर्शन कर पाए, (४) त्रिपुरसुन्दरी मन्दिर में दर्शन पाए, (५) ब्राह्मनबाड़िया में ही आखौड़ा चेकपोस्ट होने की वजह से तुरंत ब्राह्मनबाड़िया पहुँच सके, जो हमारा head quarters था, और खेओड़ा भी उसी जिले में अत्यन्त निकट था।

श्री पानुदा ने एवं कोलकाता के मातृभक्त श्री सपन गांगुली ने हमारी यात्रा के बारे में बारबार पिनाकीदा के साथ फोन से बात की थी। सपनदा ने कई प्रकार से हमारी काफ़ी सहायता की थी।

*

आखौड़ा से ब्राह्मनबाड़िया

भारत की सीमा चौकी का नाम भी आखौड़ा है। चेकपोस्ट में Immigration, customs आदि निपटाने में करीब एक घंटा लग गया। उसके बाद वहाँ से सामान उठवाकर हमने पैदल ही बांग्लादेश में प्रवेश किया। सामने से एक हँसमुख युवक ने आ कर हम से कहा,"दादा से मिलिये" (बांग्ला में)। तभी एक अत्यन्त विनम्र, स्मितमुख, सौम्यमूर्ति वयोवृद्ध सज्जन ने आ कर हमारा स्वागत किया। यही पिनाकीदा थे। उन्होंने और उनके भतीजे तपन ने हमें आराम से बिठाकर फोर्म भरवाये। हम सभी के पासपोर्ट उन्होंने ले लिये; उसके बाद संपूर्ण विधियों से निपटकर उन्होंने उस मछली की दुर्गन्धयुक्त स्थान से शीघ्र ही हमारा छुटकारा करवाया। बांग्लादेश में यह एक कष्ट हमें बारबार झेलना पड़ता था। आखौड़ा ऑफ़िस के ही एक कक्ष में मछली पक रही थी। विदेश में भारतीय यात्री (खासकर vegetarians) अपने नाक पर कपड़ा दबाकर उनके आहार के प्रति घृणा प्रदर्शित नहीं कर सकते, उसे सहना ही पड़ता है।

हम ८ व्यक्तियों में से मैं और अमला थोड़ा-बहुत बांग्ला बोल सकते थे, और समझ तो पूरा लेते थे, पढ़ भी लेते थे sign-boards वगैरह। बाहर के लोगों के साथ बातचीत कर के किसी तरह अपनी बात समझा देते थे और उनकी जान लेते थे। उसी प्रकार पिनाकीदा के साथ भी होता था। पिनाकीदा थोड़ा-बहुत अंग्रेजी भी बोल लेते थे, समझ लेते थे।

हमने घड़ी का समय आधा घंटा आगे कर दिया। बहुत प्यास लगी थी, तपन ने तुरंत mineral water का प्रबन्ध किया। वे

३ vans लेकर आए थे, एक में सारा सामान और अन्य दो में हम बैठ गये। करीब पैंतालीस मिनट में पिनाकीदा के घर ब्राह्मनबाड़िया आ पहुँचे।

हमने शुरू से होटेल में रहने की इच्छा बताई थी, लेकिन वहाँ जा कर देखा कि मांसाहार की बड़ी दुर्गन्ध आ रही थी, स्वच्छता का भी पूर्णतः अभाव था। रजतभाई, तरुणभाई अन्य स्थान को खोजने के लिये गए, उस दरमियान पिनाकीदा का बहुत आग्रह देखकर मुझे उसमें सच्चा सरल भाव दिखाई दिया अतः हमने उनके यहाँ रहने का तुरंत निर्णय ले लिया। मैं, ज्योतिबहन, तपेशभाई और नवीनभाई उनके निवासस्थान पर रहे, हालाँकि तपेशभाई बाद में होटेल में शिफ्ट हो गए। हम सबका रात्रिभोजन पिनाकीदा के घर पर था, वैसे तो ब्राह्मनबाड़िया के संपूर्ण निवासकाल में हमने सातों दिन उनके यहाँ भोजन किया। केले के पत्तों को धोकर स्वच्छ सुन्दर तरीके से स्वादिष्ट बंगाली भोजन हमें परोसा जाता था। पिनाकीदा स्वयं बांद में भोजन करते थे। जब तक हमारा भोजन चलता था, वे सामने बैठे रहते थे। उन्होंने हमें उनके अपने परिवार के सदस्यों की भाँति रखा। उनका प्रेम, सद्व्यवहार, सौम्यता और नित्य स्मितपूर्ण चेहरा - इन सबसे हम बहुत प्रभावित हो गये। उस दिन देखते ही देखते रात हो गई। सवेरे खेओड़ा जाने के उत्साह में हम सो गये।

(४)

श्रीश्रीमाँ की आविर्भाव-भूमि खेओड़ा

११-५-०७ वैशाख कृष्ण नवमी

श्रीश्रीमाँ की लीला में बांग्लादेश के जितने स्थान १८९६ से १९३२ तक विशेष रूप से ज्ञातव्य हैं, वे इस प्रकार हैं :

खेओड़ा (१८९६ से लेकर १२ वर्ष और १० माह की वय तक)

१. सुलतानपुर में मामा का घर (मामाबाड़ी)-बाल्यलीला

२. चालना (७-८ वर्ष की वय में)

३. श्रीपुर, ढाका, नरुंदी (१६ वर्ष १० माह की वय तक)

४. आटपाड़ा (ढाका के निकट विक्रमपुर जिले में १७ वर्ष ४ माह की वय तक)

५. विद्याकूट (६ माह)

६. अष्टग्राम (१९१४ में, १८ वर्ष की वय में, १ वर्ष ४ माह तक)

७. विद्याकूट (३ वर्ष तक, २२ वर्ष ४ माह की वय तक)

८. कसबा, बाजितपुर, ढाका, बाजितपुर, विद्याकूट, बाजितपुर (बाजितपुर में कुल मिलाकर ६ से ७ वर्ष)

९. शाहबाग (ढाका) (१९२४ में २८ वर्ष की वय में आगमन)

१०. सिद्धेश्वरी (ढाका), रमना (ढाका) (१९३२ तक) उसके बाद १९३२ में देहरादून के रायपुर ग्राम में आगमन, तत्पश्चात् भारत–भ्रमण प्रारम्भ ।

*

सुबह करीब ९ बजे हम दो मोटरों में बँटकर पहले ब्राह्मनबाड़िया के बाजार में गये । भारत से मेवा आदि कुछ भी भोग के लिये नहीं लाये थे, यह बड़ी गलती थी । बाजार में कहीं भी बादाम, काजू, पिस्ता या मूँगफली तक मिल नहीं रहा था । हमको बताया गया कि ढाका में ही मिलेगा, पर अब क्या करें ? आखिर तपन को भेजकर किशमिश, और आँवले जैसे बड़े बड़े नकुलदाने मँगवाये । चाँदनी के फूल की कलियों की लम्बी लड़ियों–सी मालाएँ टँगी हुई दिखाई पड़ीं, गजरे जैसी मोटी भी थीं, ये सब तथा गेंदे की मालाएँ और बहुत सारे गुलाब खरीदकर खेओड़ा की ओर प्रस्थान किया । बाजार से चलने में करीब दस बज चुके थे । मार्ग में मेघना नदी के विस्तृत पट के ऊपरवाले पुल पर से गुज़रे । करीब आधा मार्ग तय करने पर सुलतानपुर आता है । माँ के मामा का घर सुलतानपुर में था, जहाँ पर बचपन में माँ अनेक बार रही थीं । सुलतानपुर के प्रसिद्ध शिवमन्दिर का सीधा ऊँचा शिखर सड़क पर से ही दृष्टिगोचर होता है । वहाँ जाने का हमारा कार्यक्रम तृतीय दिन का था, अभी हम सीधे खेओड़ा की दिशा में आगे बढ़े । ब्राह्मनबाड़िया से करीब पौने घंटे में हम खेओड़ा पहुँच गये । करीब ४५ कि.मी. दूर है ।

पहले खेड़ा गाँव आया, फिर खेड़ेरा और बाद में खेओड़ा । गाँव में बाजार के पास हमारी गाड़ियाँ खड़ी हो गईं । अब हमें पैदल

ही आगे जाना था। समस्त बांग्लादेशी ग्राम्यप्रदेश पर वरुणदेव की असीम कृपा है। अगण्य तालाब, नदियाँ, हरेभरे खेत, हरे रंग की भिन्न भिन्न आभायुक्त वृक्षावलियाँ, नारियल के ढेर के ढेर वृक्ष और कटहल के बोझ से झुके हुए पेड़, आम-सुपारी-केले जैसे न जाने कितने प्रकार के वृक्ष दृष्टिपथ में आए। कटहल तो इतने बड़े बड़े थे कि जमीन तक झुक गये थे। खेओड़ा में माँ के घर के आसपास भी नारियल, कदम्ब, आम, सुपारी, चम्पा, पीपल, कटहल, कदली (केला) अभी भी हैं। 'स्वक्रिय स्वरसामृत' पुस्तक के खंड १ और २ में माँ के जन्मस्थान के परिवेश का स्पष्ट वर्णन है। 'स्वक्रियस्वरसामृत' खंड-५ में भी यह वर्णन पाया जाता है। नीम, पेर, एक और नीम था जिसकी छाँव में यह घर था।

चलते चलते मन में कई विचार उठ रहे थे कि, इस रास्ते पर माँ न जाने कितनी बार आई होंगी। 'निर्मला' की गतिभंगी के बारे में पढ़ा है कि नन्हीं बालिका हँसती हुई, कूदती हुई ही चलती थी, मानो स्फूर्ति और आनन्दोल्लास की फुहारें बिखेरती हुई ! हमने खेओड़ा में जिस दिशा से प्रवेश किया था, वह था पूर्व की ओर का हिस्सा। उन दिनों में भी 'पूर्वपाड़ा' (मुहल्ला) से ही प्रवेश था, और माँ के पिता का घर पश्चिमपाड़ा में था। माँ जब पूर्वपाड़ा की ओर जातीं, तब दो मार्ग थे-एक तो मैदान व जंगल के बीच हो कर जाता था, और दूसरा मुसलमानों के घरों के पास हो कर जाता था, जो छोटा मार्ग था।

हम जंगल, तालाब, मैदान आदि को पार करते हुए 'श्रीश्री माता आनन्दमयी आश्रम' आ पहुँचे। सौ वर्ष से भी अधिक आयु

के श्री माणिक महाराज हमसे मिलने के लिये आश्रम के बाहर ही खड़े थे, साथ में और लोग भी थे। हम लोगों में जिन के पास केमेरा था, उन सब ने माणिक महाराज के साथ हमारा ग्रुप फोटो लिया। सामने माँ के नाम का हाइस्कूल-उच्च विद्यालय है। आश्रम में जिस बड़े कक्ष में माँ रही थीं, वहाँ दाहिनी ओर माँ की तसवीर स्थापित कर के मन्दिर बनाया हुआ है। इस आश्रम-भवन की स्थापना १९३९ की झूलन पूर्णिमा के दिन गुरुप्रियादिदि के आग्रह से हुई थी। १९९२ के मई महीने में यहाँ शिवप्रतिष्ठा की गई है।

प्रणाम कर के, भूमिस्पर्श कर के हम माँ की आविर्भावस्थली की ओर आगे बढ़े। दूर ही से वृक्षों से घिरे हुए मन्दिर का दर्शन हुआ। ऐसा लगा जैसे लोकालय से दूर एकान्त स्थल में माँ विराजमान् हैं। पीछे विशाल खुला मैदान था और मन्दिर के सामने छोटा-सा तालाब। इसी तालाब में माँ बाल्यावस्था में स्नान करती थीं, दिदिमाँ के आदेश से जल भर कर लाती थीं। दिदिमाँ माँ को अत्यधिक निर्दोष, सरल ओर सीधी मानती थीं, चिन्ता भी किया करती थीं कि इस सीधी सरल लड़की का संसार कैसे चलेगा? एक बार माँ ने कटि पर कलसी रखकर कुछ टेढ़ी अंगभंगि करके दिदिमाँ से कहा कि देखो, अब मैं सीधी नहीं हूँ।

एक बार तालाब में अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर बालिका हावभावसहित बीचबीच में आकाश की ओर देखती हुई कुछ बोल रही थी। न जाने देव, दानव, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व में से कौन आया होगा माँ की लीला देखने के लिये!

माँ जब बहुत छोटी थीं, तब एक बार अपने पिता के पास लेटी थीं। दादा महाशय का ऐसा भक्त-हृदय था कि हरि कीर्तन में पूर्णरूपेण मग्न हो जाते थे, उनको देश-काल का होश नहीं रहता था। सारी रात जागकर बैठे बैठे कीर्तन करते रहते थे। कई बार कीर्तन के आवेश में घर-गाँव छोड़कर दूर चले जाते थे, कई दिन तक उनका कोई पता नहीं मिलता था, तब गाँव के लोग जा कर, उनको ढूँढ़ लाते थे। माँ ने पिता से पूछा,"हरि नाम करने से क्या होता है?" "हरि कितने बड़े हैं?" पिता ने कहा,"बहुत बड़े हैं।" माँ ने पूछा,"उस मैदान में समा सकते हैं?"

हमने दूर से वही मैदान देखा। मैदान के उस पार जंगल का आभास देती हुई झाड़ियाँ हैं।

माँ के प्राकट्य-स्थल पर छोटा-सा मन्दिर बना हुआ है, और आँगन के चारों ओर छोटी दीवार का घेरा है, छोटा-सा लोहे की जालीवाला दरवाजा है, जहाँ पर प्रायः ताला बंद रहता है। मन्दिर के बीचोबीच पत्थर की ऊँची वेदी है जो प्राकट्यस्थान है, और जहाँ पर पूजा होती है।

१९३७ के जून या जुलाई में माँ का खेओड़ा आगमन हुआ था। उस समय माँ का नाम सुप्रसिद्ध हो चुका था। गुरुप्रिया दिदि अपनी डायरी के खंड-४ में लिखती हैं कि माँ के दर्शन करने के लिये वहुत भीड़ हो गई। माँ जिस स्थान पर खेलती थीं, जिस पुकुर में स्नान करती थीं, वे स्थान माँ ने दिखाए, वृद्ध-वृद्धाएँ भी माँ के चरणों में गिरकर प्रणाम करते थे।

पुस्तक में बंगाली सन् होने से शायद हमारा १९३६ या ३७ होगा ऐसा मानती हूँ।

१९४६ या ४७ में जब माँ का पुनः खेओड़ा आगमन हुआ तब साथ में भक्तगण भी थे। दिदिमाँ से पूछा गया कि माँ का प्राकट्यस्थान दिखाइए, तब वे भी निश्चित स्थान नहीं बता पाईं। १२ वर्ष १० माह की वय में जब माँ का विवाह हुआ, और माँ जेठ रेवतीबाबू के घर रहने गईं, उसके बाद दादामहाशय अपना घर व जमीन मुसलमान को बेचकर विद्याकूट में जा कर बस गये। विद्याकूट उनका पैतृक स्थान था। माँ का 'खयाल' ही ईश्वरेच्छा है, अतः मुसलमानों ने उस घर को आवास नहीं बनाया, रहने के उपयोग में नहीं लिया, अपितु उनकी कृषि की पैदाइश का धान, घासफूस इत्यादि वहाँ पर भरने लगे। इस प्रकार उस स्थान की शुद्धता-पवित्रता में कोई कमी नहीं आई। जब दिदिमाँ भी स्थान नहीं दिखा सकीं, तब माँ ने जा कर फूस के एक ढेर के ऊपर अपना श्रीहस्त लम्बा कर के रख दिया। स्थान निश्चित हो गया। उसी भूमि को मुसलमानों के पास से आश्रम ने खरीद लिया। वहाँ पर वेदी तथा मन्दिर निर्माण करने के लिये जब नींव खोदी जा रही थी, तब माँ ने अपना एक चरण एक स्थान पर रखा, यही वह निश्चित स्थान था जहाँ पर जगज्जननी भगवती का आविर्भाव हुआ था। तदनुसार उसी स्थल पर वेदी बनाई गई।

*

माँ के आविर्भाव की विशेषता

कृपया इसे ध्यान देकर पढ़िए :

माँ स्वयं प्रकट हुई थीं। माँ का गर्भवास नहीं हुआ था। श्रीमद्भागवत में जो "अयोनिज अवतार" की बातें आती हैं, वही अवतार माँ का हुआ है–"अयोनिज"।

(१) दिदिमाँ ने स्वयं कहा था कि उनको प्रसूति की पीड़ा नहीं हुई।

(२) दिदिमाँ ने स्वयं कहा था कि माँ रोई नहीं थी।

(३) माँ का नालछेदन नहीं हुआ था, क्योंकि नाल थी ही नहीं। (कमलादी और रमादी नाम की दो विदुषी बहनें माँ की पुरानी भक्त थीं। कमलादीने आश्रम की पत्रिका 'आनन्दवार्ता' में एक लेख लिखा था, जिसमें वे कहती हैं कि–उनको एक बार माँ के कक्ष के द्वार पर बिठाया गया था, क्योंकि भीतर कोई सेविका नहीं थी। कमलादी सोच रही थी कि मुझे कभी भी माँ के देह को स्पर्श कर के मालिश करने की सेवा नहीं प्राप्त हुई। तभी माँ ने कमलादी को आवाज देकर भीतर बुलाया और पेट पर मालिश करने को कहा। कमलादी ने देखा, और छू कर भी देखा कि माँ को नाभि नहीं थी, था तो एक हल्का-सा गुलाबी रंग का जरा-सा दबा हुआ निशान। एक spot केवल।)

(४) दिदिमाँ की प्रसूति किसीने नहीं कराई थी। माँ जब भूमि पर प्रकट हुईं तब दिदिमाँ सो रही थीं, और माँ ने स्वयं "मायेर कथा" में कहा है कि तब केवल खूडीमा कमरे में आईं,

उन्होंने माँ को देखा और भूमि पर से उठा लिया। क्या हुआ था वह सिर्फ खूडीमाँ जानती हैं–यह बात माँ ने बताई है। (देखिये "मायेर कथा" पृष्ठ - ३)

(५) गुरुप्रियादिदि की डायरी में दिदि लिखती हैं कि माँ ने एक बार दिदि से कहा कि लोग यही सोचेंगे कि जैसे माता-पिता से मनुष्य का जन्म होता है, वैसा ही माँ का भी है। जब दिदि समझी नहीं और दुबारा पूछा तब माँ ने वही बात दोहराई। (मुझे ठीक ठीक माँ के शब्द याद नहीं हैं, किन्तु मैंने पढ़ा है और अर्थ यही निकलता है।)

(६) माँ के पिताजी कई महीनों से गाँव से बाहर थे और माँ के प्राकट्य के बाद लौटे थे।

(७) माँ रसोईघर में प्रकट हुईं। बंगाल के घरों में उन दिनों प्रसूति हमेशा गौशाला में हुआ करती थी, क्योंकि वह स्थान शुद्ध और disinfectant होता था, अशौच मानने के कारण रसोईघर में तो कदापि नहीं। माँ रसोईघर में पाई गई थीं।

(८) यदि दिदिमाँ अशौच अवस्था में होतीं और यदि शीघ्र प्रसूता होतीं तो तुरंत दूसरे दिन खुद चलकर ३-४ सीढ़ियाँ उतरकर-चढ़कर जातीं-आतीं, और तुलसीतला में शिशु को लिटा सकती थीं?

माँ को किसी को तो लोकदृष्टि से अपने माता और पिता बनाना ही था। महामाया ने जिस प्रकार राम और कृष्ण के जन्म के समय आवरण डाला, वैसा ही माया का, अविद्या का आवरण दिदिमाँ व दादामहाशय के ऊपर डाल दिया। सप्तशती में है–

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।।

अर्थात् भगवती महामाया ज्ञानियों के चित्तों को भी जोर से खींचकर मोह में डाल देती हैं। (और यहाँ तो साक्षात् भगवती का आविर्भाव हो रहा है!)

"मायेर कथा" स्वयं माँ के श्रीमुख से निःसृत वाणी है। माँ बोलती गईं ओर भाईजी लिखते गये। उसमें माँ (पृष्ठ संख्या ३ में) कहती हैं कि–"वैशाख मास बृहस्पतिवार, रात्रि अवसान की ओर पर यह शरीर खेओड़ा में एक फूस के घर में तुम लोगों की दृष्टि में तो। प्रायः पूर्व और उत्तर कोने की ओर सिर। शरीर किन्तु तुम लोगों के देखने में मिट्टी स्पर्श मात्र ही चितरूप से जरा-सा बाएँ घूम जाता है। उसी समय इस शरीर की ठाकुरमा की अपनी खूड़िमा ने उठा लिया। केवल वे ही एकमात्र उस समय उस में थीं। फूस की दीवार के बीच की फाँक से (मैं) से नीम का पेड़ और आम के पेड़ की डाली-पत्ते देख रही थी।"

(आगे भी माँ एक जगह कहती हैं) "ठाकुरमा की खूड़िमा जो यह शरीर तुम लोगों की दृष्टि से देखने के समय घर में थीं।... (इत्यादि)

माँ के प्राकट्य के समय वहाँ कोई नहीं था। माँ कहती हैं–"खूड़िमा वहाँ आई तब तुम्हारी दृष्टि में यह शरीर"..."उन का प्रकाश (प्राकट्य) वे ही जाने।" ('मायेरकथा' – पृष्ठ संख्या ३)

परमात्मा धरातल पर अवतरित होते हैं, तब कहाँ से और कैसे आते हैं यह मनुष्य समझ नहीं सकता, जान नहीं सकता। खेओड़ा में मन्दिर के पास बाईं ओर एक छोटा-सा मंडप बनाया गया है और माँ की वाणी दीवार पर लिखी गई है बांग्ला में :

"एइ स्थानटि पवित्रभावे राखले तोमादेरइ मंगल होबे। एइ स्थाने विशेषभावे प्रार्थना करले फल पाबे। एइ स्थानटि के अपवित्र करबे ना।"

अर्थात्

"इस स्थान को पवित्र रूप से रखोगे तो तुम लोगों का ही मंगल होगा। इस स्थान में विशेष रूप से प्रार्थना करने पर फल पाओगे। इस स्थान को अपवित्र मत करना।"

*

माँ के घर के सामने सफ़ेद मुलायम बालू थी। माँ ने स्वयं उस विषय में कहा था कि हाथ में चिपकती भी नहीं थी, झड़ जाती थी। बालिका ने बचपन में बालू का एक स्तूप बनाया, माता बुलाने आई कि-चल, अंदर आ जा, देख, कितनी कड़ी धूप है-तब निर्मला ने कहा-इस के भीतर सब ठाकुर हैं.... इत्यादि, और स्वयं स्तूप के ऊपर बैठ गईं (सर्वदेवदेवीमयी), खिलखिलाकर हँसने लगीं, ऊपर आकाश की ओर देखा और ताली दे कर खड़ी हो गईं। स्तूप टूट गया।

और भी बहुत कुछ पुस्तक में पढ़ा था, तादात्म्य का अनुभव हुआ। तालाब के पीछे जंगल था, अब भी है, उसके बारे में भी कई

बातें हैं। माँ टाकुरमा (दादी) के साथ जंगल में साग लेने जाया करती थीं। एक बार माँ तालाब के किनारे खड़ी थीं, एकाएक जंगल की ओर जा कर देखने लगीं, फिर दौड़ती हुई आईं और अपनी माता से कहा-बड़े कुत्ते से भी बहुत बड़ा...काला...सफेद...इत्यादि– ऐसे किसी को माँ ने देखा। किस रूप में कौन उद्धार पाने के लिये आया होगा ?

*

मन्दिर में वेदी का स्पर्श कर के हम सबने बारी बारी से प्रणाम किया, पुष्पमालाएं अर्पण कीं। नवीनभाई ने बैठकर सब की ओर से पूजा की। भीतर एक ही व्यक्ति के बैठने की जगह है। हममें से कुछ ने पाठ किया, जप किया। जब आरती की, तब वायुमंडल में "जय अम्बे गौरी मैया" स्वर छा गए। ग्रामवासी स्त्री-पुरुष-बच्चे भी उपस्थित थे। हम सब ने थोड़ा सा प्रसाद घर ले जाने के लिये रखा, बाकी सब ग्रामवासियों में बाँट दिया। पूजा के प्रारम्भ से अन्त तक ये लोग बिना शोर मचाए शांति से खड़े रहे थे। इनके पूर्वज माँ की बाल्यलीला के साक्षी थे !

मन्दिर के आसपास घूमते हुए उस समय के वातावरण की कल्पना करते हुए मुझे दो-एक झोंपड़ों जैसे घर दिखाई दिये पास ही में। वहाँ जाकर मैंने टूटी-फूटी बांग्ला में बातें शुरू की। ४-५ औरतें छोटी-बड़ी मुझे घेरकर खड़ी हो गईं, मुझे बिठाया। यह स्वच्छ घर मुसलमानों का था। उनमें से एक जो जवान थी, उसने बताया-मेरी बुआ माँ के साथ खेलती थीं, मेरे बाबा (पिता)ने भी

माँ को देखा था। दादामहाशय के समय से ये लोग माँ के पड़ोसी थे। मैंने उनसे कहा कि 'मायेर कथा' पुस्तक में खेओड़ा के बारे में पढ़ा है, तो कहने लगीं कि हमें वह पुस्तक दीजिये। मैंने पुस्तक मेंसे कुछ-कुछ दिखाया, उन्होंने पढ़ा। उन्होंने कहा कि तालाब पहले इससे भी छोटा था। आश्रम की ओर से उसे खुदवा कर, सफ़ाई करवा कर कुछ बड़ा बनाया गया है और सीढ़ियाँ भी बनाई गई हैं। हमने तालाब का जल और मिट्टी लेकर छोटी शीशी में भरा, जन्मस्थान की मिट्टी, तुलसीतलेकी मिट्टी भी लेकर रखी।

यह देखकर अत्यन्त आनन्द हुआ कि यहाँ के मुसलमान भी बहुत अच्छे भले हैं। जब माँ के माता-पिता यहाँ रहते थे तब गाँव में तीन ओर मुसलमान रहते थे। पश्चिमपाड़ा में केवल दो घर ब्राह्मणों के थे-एक माँ के पिता का ओर दूसरा खूड़ीमा का। गाँव में ब्राह्मणों के घर बहुत कम थे, कुछ कायस्थों के थे, और अधिक मुसलमानों के तथा अन्य जातियों के। पश्चिमपाड़ा में दादामहाशय के घर के तीनों ओर मुसलमान थे, जिनमें से एक घर इस मुसलमान परिवार का था जिनके साथ मैं बैठी थी। वर्षाकाल में माँ के घर के तीनों ओर जल भर जाता था। पूर्वपाड़ा में ब्राह्मणों के ९-१० घर थे, कायस्थों के १४-१५ ओर मुसलमानों के सबसे अधिक।

माँ का परिवार आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं था, फिर भी सन्तोष ओर शांति से घर सुखपूर्ण ही था। माँ की ठाकुरमा अत्यन्त धर्मपरायणा थीं। दिदिमा के माता-पिता का परिवार भी धार्मिक था, उनके पिता, भाई आदि विद्वान कर्मकांडी थे। दोनों ओर से माँ के पूर्वज एवं साम्प्रत परिवार संस्कारी, भद्र, नेक ओर बहुत विद्वान

भी थे । माँ के घर में दो कमरे थे, एक रसोई का और एक शयन का । मिट्टी-गोबर से पुती हुई सुस्वच्छ फर्श, चटाई की दीवारें ओर फूस का छप्पर था ।

समस्त प्राचीन त्रिपुरा में अर्थात् आगरतला से लेकर खेओड़ा आदि ब्राह्मनबाड़िया के गाँवों में भी बड़े सुन्दर ढंग से बुनी हुई चटाइयों को वैसे ही सुन्दर ढंग से दीवारों की जगह खड़ा किया गया है । देखकर आश्चर्य लगता है । उन झोंपड़ों में दरिद्रता नहीं, बल्कि कलात्मकता ओर स्वच्छता दिखाई देती है ।

कुछ ही दूरी पर हमारा आश्रम है, जहाँ हम पहले ही हो आए थे । उसी के पास विद्यालय है । विद्यालय के टेबल-कुर्सियों वाले एक कमरे में बैठकर हमने अपने साथ लाया गया नाश्ता किया । यही आज का भोजन था, क्योंकि अब यहाँ से हमें 'चालना' ओर 'विद्याकूट' जाना था । पिनाकीदा 'शुद्धाचारी' होने के नाते बाहर जाने पर जल तक ग्रहण नहीं करते थे । वे खेओड़ा आश्रम कमिटी के वाइस प्रेसिडन्ट हैं । प्रेसिडन्ट श्री नुरुल हक वृद्ध होते हुए भी हम से मिलने आये थे । नुरुल हक और उनके भाई के उत्तम चरित्र के बारे में हमने यह सुना :

कुछ साल पहले-शायद पाकिस्तान युद्ध के समय हिन्दू-मुस्लीम दंगे हुए थे । मुसलमान लोग हिन्दू मंदिरों को तोड़ रहे थे। तब कुछ मुसलमान खेओड़ा में माँ के आश्रम को तोड़ने के लिये आए। ये दोनों भाई दरवाजा रोककर खड़े हो गए और बोले कि पहले हमको मारो उसके बाद ही भीतर जा सकोगे । आखिर दंगेबाज कुछ भी किये बिना लौट गए ।

*

चालना

चालना कोमिल्ला जिले में है, पर खेओड़ा से करीब २५ कि.मी. की दूरी पर है। रास्ता अच्छा है। माँ जब ७-८ वर्ष की थीं, तब बड़ोमा (वही खूड़ीमा) के साथ चालना गईं थीं। चालना का अन्य नाम चांदला है। जिस दिन माँ वहाँ गईं, उस दिन मेला लगा था। शिवमन्दिर के पश्चिम में एक विशाल वटवृक्ष था जिसके नीचे बच्चों के मुंडन के बाल छोड़ दिये जाते थे। माँ को उस पेड़ के नीचे बिठाकर बड़ोमा बाजार में गईं। निर्मला ने वहीं बैठे बैठे देखा कि एक मन्दिर है जिसमें कोई विग्रह नहीं है और सामने तालाब है। उसके जल में शिवजी उतर रहे हैं और पुनः बाहर आ रहे हैं, इस तरह क्रीड़ा कर रहे हैं। बड़ोमा के लौटने पर उनको बताया, किन्तु उन्होंने या किसी औरने भी इस बात का विश्वास नहीं किया। मन्दिर में शिवजी के दर्शन कर के सब खेओड़ा वापस गए, तब किसी ने बताया कि चालना के शिवमन्दिर में से कभीकभार शिवजी अदृश्य हो जाते हैं और तालाब से मिलते हैं !

उन दिनों का वटवृक्ष तो अब नहीं है, पर उसका जो स्थान था, उसके सामने की ओर एक बड़ा पीपल का वृक्ष है, जिसके नीचे बच्चों के बाल रखे जाते हैं। उसे बांग्ला में 'अश्वत्थबट' कहते हैं। मन्दिर के दोनों ओर तालाब है। प्रवेश करने पर बाईं ओर का तालाब ही वह तालाब है जिसमें माँ ने शिवजी को डूब लगाते हुए देखा था।

मन्दिर के बाहर खुला आँगन है। चारों ओर बहुत स्वच्छता थी। मन्दिर का जालीदार दरवाजा था, जिसमें से हमने दर्शन किये। शिवलिंग काफ़ी बड़ा है और कमल की पँखुड़ियों के बीच विराजमान्

है। परम्परागत लिंग या योनिपीठ नहीं थे। मन्दिर के बाहर बलि का स्थान है। बंगाल में माँ काली के सिवा शिवजी को भी बलि अर्पण करने की प्रथा दिखाई देती है।

विद्याकूट

जैसे कि विद्याकूट शब्द से ज्ञात होता है, यहाँ शास्त्र में पारंगत विशेषत: भट्टाचार्य पंडितों का निवास था, अत: विद्या का उच्च शिखर ऐसा नाम हुआ था। माँ के पिता के पिता का स्थान विद्याकूट था, किन्तु पिता की माता (माँ की ठाकुरमा) अपने पितृगृह खेओड़ा में रहने चली गई थीं। बाद में दादामहाशय, माँ के विवाह के उपरान्त खेओड़ा की जमीन को बेचकर विद्याकूट चले गए थे। विद्याकूट में उनके खेत थे, जमीन थी।

माँ जब ९-१० महीने की थीं, तब की विद्याकूट की एक अलौकिक घटना दिदिमाँ ने बताई है। दिदिमाँ खाना बना रही थीं, माँ निकट ही थीं भूमि पर। एक दीर्घकाय महात्मा आए, माँ उनकी ओर देखकर मुस्करा रही थीं जैसे उनको जानती हो। महात्मा ने माँ की पूजा की और माँ को ऐसे उठाया कि माँ के चरणों ने उनके मस्तक का स्पर्श किया, फिर दिदिमाँ से कहा,"यह जो देख रही हो-यह माँ है – स्त्री-पुरुष में नहीं, विश्व-विश्वातीत – घर में नहीं रख सकोगी-रहेगी भी नहीं (घर में)" और तुरंत अदृश्य !

'माँ' सम्बोधन सर्वप्रथम विद्याकूट में हुआ माँ की ९-१० महीने की वय में।

माँ अनेक बार विद्याकूट जा कर रही थीं। भट्टाचार्य परिवार के कई सदस्यों के साथ माँ की लीला की बातें है। करीब १८ वर्ष की वय में भोलानाथजी के साथ माता-पिता के यहाँ विद्याकूट में कुछ समय तक रही थीं। वहाँ से अष्टग्राम गईं, जहाँ १ वर्ष ४ माह तक रहने के बाद फिर ३ वर्ष विद्याकूट में रही थीं। बाजितपुर जाने के बाद भी बीच बीच में विद्याकूट आई थीं। यहाँ पर भी भावसमाधि हुआ करती थी, पर किसी को पता न चले यह 'खयाल' था।

अष्टग्राम में भावावस्था बारबार होती थी, अतः लोगों में उस बात का प्रचार हुआ। उसके बाद माँ पुनः विद्याकूट आईं – तब यहाँ के विद्वान पंडित जो माँ से उम्र में बहुत बड़े थे, माँ को प्रश्न पूछने के लिये आते थे, ओर प्रश्नों का समाधान लेकर जाते थे।

*

कुछ वर्ष पूर्व जब पाटुनदा स्थानों को खोजने के लिये गए थे, तब उन्होंने विद्याकूट में दादामहाशय के घर का base देखा था। हम लोग मोटर से उतरे, तो पिनाकीदा ने लोगों से कहा कि हमें 'भट्टाचार्यबाड़ी' जाना है। कुछ लोग हमारे साथ चलने को तैयार हो गए। पिनाकीदा इसके पहले पाटुनदा के साथ यहाँ आ चुके थे, और उनकी बुआ भी इसी भट्टाचार्य परिवार की वधू थीं और वहीं पर रहती थीं, इसलिये उन्हें थोड़ा-बहुत परिचय उस स्थान से था।

हम सब पैदल ही चले। कुछ ही देर में एक विस्तृत प्रांगण में आ पहुँचे। वहाँ जिस स्थान पर दो मकान थे-दोनों ही टिन की दीवार ओर चटाई के छप्परवाले छोटे-से थे, वह सारी जगह दिखा

कर हमें बताया गया कि यही भट्टाचार्यबाड़ी है। दादामहाशय के घर के बगल में उनके पैतृक भाई (cousins) वगैरह रहते थे, जिन में से एक का नाम, पुस्तक में है अनन्तबन्धु विद्याविनोद। दादामहाशय के बड़े भाई के पुत्र-पुत्रवधू का भी उल्लेख है, जिनमें से एक नाम है उपेन्द्रचन्द्र भट्टाचार्य। हमने जो बड़ा-सा आँगन (compound) देखा, उसी में आसपास अगल-बगल में इन सबके घर रहे होंगे। सभी घर भट्टाचार्य परिवार के ही थे, अतः भट्टाचार्यबाड़ी। दादामहाशय का जो घर था, जिसमें माँ भी रहती थीं, वह हमें पिनाकीदा ने दिखाया। इस समय वह पुराना असली मकान तो नहीं है, किन्तु दरवाजे के नीचे जो base दिखाई देता है, उसमें पुरानी ईंटें, पत्थर, मिट्टी का plaster ठीक ठीक दिख रहा है, छोटी सी सीढ़ी भी वही है। ऊपर टीन से किसी मुसलमान का घर बना दिया गया है।

हमने श्रद्धापूर्वक सिर को मिट्टी से लगाकर प्रणाम किया। निकट ही बड़ा-सा तालाब है। बताया गया कि वह पहले के समय का है। माँ उसमें स्नान करती होंगी।

हम वापस जाने की तैयारी कर रहे थे। आकाश में बादल घिर आए थे। बारिश के छींटे गिरने लगे और जब हमने चलना शुरू किया तब बारिश होने लगी। भट्टाचार्यबाड़ी में जो सज्जन थे, वे भी हमारे साथ चल रहे थे। कार के पास पहुँचे, तब उस सज्जन ने एक दूकानवाले को ऑर्डर देकर हमें उबली हुई गर्म कॉफ़ी पिलाई। सभी लोग बारिश में भीग गये थे, गर्म कोफी अच्छी ही लगी। हमने गाड़ी में बैठे बैठे ही पी ली। बाहर अपरिचित मुसलमान लोग खड़े थे, उनमें से कुछ ने बड़े ही मित्रभाव से हम से बातचीत शुरू कर

दी। बांग्लादेश में जहाँ जहाँ हम गए, लोगों कों हमें देखते ही पता चल जाता था कि हम भारतीय हैं, तब वे लोग अपना कोई न कोई Indian connection बताने लगते। वहाँ के लोग बांग्ला को छोड़ और कोई भी भाषा नहीं जानते, नहीं बोल पाते, अंग्रेजी भी नहीं, हिन्दी भी नहीं। वहाँ की मस्जिदों के बाहर भी बांग्ला लिखी हुई होती है। केवल एक ही जगह मैंने उर्दू देखी थी। बांग्ला भी कैसी ? संस्कृत शब्दों से भरपूर !

विद्याकूट पहुँचने में करीब पौन घंटा लग गया था। रात हो चुकी थी, बारिश हो रही थी। Drive बड़ा ही सुन्दर रहा, वर्षा और हरियाली !

* * *

(५)

अष्टग्राम

१२-५-०७ **वैशाख कृष्ण दशमी**

माँ ने पति रमणीमोहन चक्रवर्ती को भोलानाथ नाम दिया था। विवाह के समय बंगाली ब्राह्मणों की प्रथानुसार माँ की वय थी १२ वर्ष १० माह, किन्तु भोलानाथजी की वय थी २८ वर्ष। उन में पति-पत्नी का सम्बन्ध कभी नहीं था। विवाह के बाद माँ रेवतीबाबू (भोलानाथजी के ज्येष्ठ भ्राता) व जेठानी के पास रही थीं। सर्व प्रथम भोलानाथजी के साथ रहने गईं अष्टग्राम में, तब माँ की वय थी १८ वर्ष। अष्टग्राम में आते ही माँ की भावावस्था प्रकट होने लगी। यह भोलानाथजी का सर्व प्रथम अनुभव था माँ की सन्निधि में रहने का, तिस पर आते ही माँ के शरीर में विविध यौगिक क्रियायें दृष्टिगोचर होने लगीं। प्रथम बार की समाधि तीन दिन तक रही, तृतीय दिन धीरे धीरे बाह्य ज्ञान आने लगा। माँ का शरीर अस्वाभाविक अवस्था में आ जाता था। इन सब अवस्थाओं के भोलानाथजी मौन साक्षी रहे। माँ रातभर जागती थीं, क्रियाएं होती थीं, समाधिस्थ भी रहती थीं। भोलनाथजी अपनी अपूर्व रूपवती अत्यन्त सुन्दर पत्नी की सुकोमल देह का इस प्रकार जतन करते जैसे पिता अपनी छोटी-सी पुत्री का बहुत चिन्ता से, भय से, आशंका से, विस्मय से और आदर से। अष्टग्राम से माँ की भावावस्था उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होने लगी। भोलानाथजी एक मूक दर्शक की भाँति माँ की अपने आप होती हुई यौगिक क्रियाएं तथा भावावस्था से होते हुए दैहिक परिवर्तनों को देखकर भयभीत एवं आश्चर्यचकित हो जाते थे। जब माँ लोकालय

में मातृस्वरूप में प्रकट हुईं, तब **माँ** के मार्गदर्शन में उनकी तीव्र तपस्या का आरम्भ हुआ। कई बार संपूर्ण रात जागकर जप करते या ध्यानस्थ रहते। **माँ** ने कहा था कि भोलानाथ को साधारण मत समझो। वे पूर्व जन्म के उच्च कोटि के योगी थे। उनकी पूर्व जन्म की समाधि रमना आश्रम में **माँ** ने उनको दिखाई थी। भोलानाथजी में शुरू से आखिर तक बालसुलभ निर्दोषता, निर्मोही भाव एवं वैराग्य थे, जो वैराग्य बाद में तीव्ररूपेण वृद्धि प्राप्त करता गया। बाद में तारापीठ महाश्मशान में तारामन्दिर में तथा देहरादून के रायपुर के शिवमन्दिर में वे तीव्र तपस्या में जुट गये। अन्त में कैलास–मानसरोवर में **माँ** के श्रीमुख से संन्यासमंत्र प्राप्त करके, हरिद्वार में **माँ** के आदेशानुसार संन्यास–प्रक्रिया से गुजरकर, देहरादून के **माँ** के किशनपुर आश्रम में **श्रीश्रीमाँ** के प्रति संपूर्ण मातृभाव के साथ, "माँ माँ" उच्चारण करते हुए **माँ** की उपस्थिति में १९३८ में उन्होंने देहत्याग किया। विदेही होने के पश्चात् भी वे **माँ** के पास आए थे, कुछ बातें **माँ** ने बताई थीं।

माँ सुलतानपुर की मामाबाड़ी से विद्याकूट गईं और वहाँ से १९१४ में अष्टग्राम आ कर १ वर्ष और ८ माह तक वहाँ निवास किया। भोलानाथजी को ढाका के नवाब की कचहरी (office–कार्यालय) में नौकरी मिली थी। इसी कारण से **माँ** का उनके साथ अष्टग्राम आना हुआ।

अष्टग्राम में जयशंकर सेन का पक्का बड़ा मकान था। उनके कम्पाउन्ड़ में कुछ छोटे छोटे स्वतंत्र घर थे कच्चे और टिन–फूस के बने हुए। इनमें से एक में भोलानाथजी **माँ** को लेकर निवास करते थे। उनके सहकर्मचारी क्षेत्रबाबू ओर मधुबाबू भी उन्हीं घरों में अपने

अपने अपने परिवार के साथ रहते थे। मधुबाबू का घर भोलानाथजी के साथवाला था। भोलानाथजी का बिलकुल आखिरवाला था। उनके घर के बाहर तुलसीक्यारा था, एक ओर बाँस की झाड़ी थी, दूसरी ओर सड़क थी जिसको छू कर नहर जाती थी, तीसरी ओर बगीचा था जो जंगल जैसा ही था, ओर चौथी ओर तालाब था। नहर की ओर चटाई का बेड़ा था। माँ के घर की दीवारें चटाई की थीं और टिन का छप्पर था। घर से थोड़ी ही दूरी पर एक नीम का पेड़ था। तालाब के उस पार गाँव की बस्ती थी। ऐसे शान्त परिवेश में माँ संपूर्ण एकान्त में रहती थीं।

तालाब ठीक सामने ही था। उसके किनारे पर एक शिवमन्दिर था, जहाँ प्रतिदिन सन्ध्या-कीर्तन होता था। माँ के तुलसीक्यारे के पास जब सर्व प्रथम बार 'हरिलूट' कीर्तन हुआ था, तब उस शिवमन्दिर में कीर्तन करनेवालों ने भी हिस्सा लिया था।

जयशंकर सेन के परिवार में उनकी पत्नी, पुत्र शारदाबाबू और पत्नी के भाई (साले) हरकुमार थे। हरकुमार तो माँ से उम्र में बहुत बड़े थे। माँ उनके सामने अवगुंठन में रहती थीं, बात भी नहीं करती थीं। उन्होंने माँ का मुख भी नहीं देखा था, फिर भी हररोज दूर से प्रणाम करते थे। उन्होंने एक बार माँ से कहा कि, "आज मैं तुम्हें माँ कहता हूँ, एक दिन सारा जगत् तुम्हें माँ कहेगा।"

विद्याकूट में प्रथम बार महात्मा द्वारा "माँ" सम्बोधन हुआ जब माँ की वय ९-१० महीने की थी।

अष्टग्राम में द्वितीय बार हरकुमार द्वारा "माँ" सम्बोधन हुआ।

बाजितपुर में माँ के स्वमुख से प्रकट हुआ "पूर्ण ब्रह्म नारायण"।

अष्टग्राम में प्रथम कीर्तन में ही माँ की भावावस्था हुई थी। दूसरे, तीसरे और चौथे कीर्तन में भी उत्तरोत्तर भाव हुआ था। माँ के देह से निताई–निमाई प्रकट हुए, कीर्तन–कक्ष में दिव्य प्रकाश छा गया था।

'हरि' नाम से माँ में भावप्रकाश होता था, श्रीशरीर में यौगिक क्रियाएँ होती थीं, अपने आप हाथ की सहायता के बिना सिद्धासन, पद्मासन आदि अनेक आसन हो जाते थे। एक बार मत्स्यासन में जीभ बाहर निकलकर सिर के ऊपर से होकर पीछे भूमि को स्पर्श कर गई थी। यह कैसी अद्भुत क्रिया है! माँ की उस भावदशा की विभिन्न अवस्थाओं का जो वर्णन पढ़ा है वह चकित कर देनेवाला है।

माँ की जीवनलीला को देखते हुए हरिनामकीर्तन का माहात्म्य समझ में आता है। शास्त्र में कहा है कि परमतत्त्व की प्राप्ति हेतु सत् युग में तप, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में योग और कलियुग में है केवल हरिनाम। सत्युग में सहस्त्रों वर्षों तक किये गये तप का फल कलियुग में केवल 'नाम' से प्राप्त होता है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्यैव नास्त्यैव नास्त्यैव गतिरन्यथा॥

अष्टग्राम में सन्तान के नाम से व्यक्ति को पहचाना जाता था जैसे कि अमुक की माँ। जयशंकर सेन की पत्नी ने माँ से कहा कि तुम सर्वदा आनन्द में रहती हो, मुस्कराती रहती हो, इसलिये तुम्हारी

सन्तान 'खुशी' और तुम्हारा नाम 'खुशीरमा' (खुशी की माँ)। माँ अलौकिक सुन्दरी थीं, इसलिये दूसरा नाम हुआ 'रांगादिदि'।

*

कल जब विद्याकूट से लौटे तब बारिश हो रही थी। रात को सोते समय भी बारिश जारी रही। आज सवेरे भी बारिश है, बीच बीच में बंद रहकर फिर शुरू हो जाती है, आकाश में बादल घिर आए हैं। पिनाकीदा ने कल रात को निश्चित किया है कि बारिश के कारण पहले बाजितपुर जा कर पता लगाना पड़ेगा कि अष्टग्राम जाना सम्भव है कि नहीं ? नाव जाएगी कि नहीं ? किन्तु जब उनके घर से चले, तब सीधे अष्टग्राम के लिये जहाँ से नाव पाई जाती है, उसी जगह पहुँच गए। बारिश भी थम गई।

ब्राह्मनबाड़िया से चलने से पहले होटेल में अमला ने अपने कूकर में पुलाव बनाकर साथ में ले लिया था। हम सबने कुछ न कुछ खाने का सामान और पीने के पानी की बोतलें ले ली थीं, कारण यह था कि आज जाने-आने के ही दस घंटे लगने वाले थे, तदुपरान्त अष्टग्राम में जितना समय लगेगा। पिनाकीदा ने सवेरे घर में खा लेने के बाद रात को घर लौटने तक एक बूँद पानी तक नहीं पिया था, खाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। ७४ वर्ष की उम्र में भी वे घंटों तक एक आसन पर सीधे तन कर बैठ सकते हैं, हररोज हमारे साथ घूमते हैं पर थकान नहीं दिखाई देती।

हम दो कारों में बैठकर डेढ़ घंटे के ड्राइव के बाद 'कुलियारचर' नामक स्थान पर ब्राह्मनबाड़िया की उत्तर-पश्चिम दिशा में आ पहुँचे।

यहाँ से पिनाकीदा ने १६०० 'टाका' में एक मोटरबोट तय कर ली। हमें मार्ग में तीन नदियाँ पार करनी थीं। हम जहाँ से बैठे वह मेघना नदी की प्रशाखा काली या कालिया थी, आगे ब्रह्मपुत्र ओर मेघना आती हैं। जहाँ पर नदी का पट विस्तीर्ण है, उसे देखते ही पता चल जाता है कि यह ब्रह्मपुत्र है। नदियाँ सभी शान्त हैं।

हमारे बांग्लादेश जाने से पहले ही भारत में पिनाकीदा का संदेश मिला था कि वर्षा के कारण नदियों में जल बहुत बढ़ गया है, अष्टग्राम नहीं जा पाएंगे। बंगाल में वैशाख के महीने में अक्सर जोरों की बारिश होती है जिसे 'कालबैसाखी' कहते हैं, बहुत आँधी-पानी चलता है। तथापि अन्तर में पूर्ण विश्वास था और तीव्र इच्छा तथा स्थिर संकल्प था कि अष्टग्राम तो जाएँगे ही। **माँ** ने कहा है,"सत् संकल्प पूर्ण होता है"।

आज बहुत आनन्द था। मोटरबोट के ऊपर छप्पर था। अंदर चटाइयाँ बिछी हुई थीं, उस पर हम बैठ गए। दोनों ओर से और सामने से खुला था। थोड़ी ही देर में तरुणभाई ने शुरुआत की सोने की और एक के बाद एक सभी ठंडी लहरों का मजा लुटाते हुए सो गए। मैं और अमला बैठे रहे। भीतर कितनी अद्भुत प्रतिक्रियाएँ हो रही थीं, कितने वर्षों से मैं अष्टग्राम का मानसिक चित्र देखती आ रही हूँ। **माँ** की अष्टग्राम-लीला ने मुझे बहुत ही मुग्ध कर दिया था। आज चर्मचक्षु से देखेंगे, भूमि को मस्तक से स्पर्श करेंगे!

दोपहर को सबको जगाकर हमने अमला का बनाया हुआ सब्जियोंवाला पुलाव बड़ी तृप्ति से खाया। ठीक साढ़े तीन घंटे बाद

बोट की गति धीमी हो गई। बाएँ किनारे पर दूर से बस्ती दिखाई पड़ने लगी। यही है अष्टग्राम !! वैसे तो खेओड़ा-शाहबाग-सुलतानपुर भी कल्पना में अंकित हो गए थे।

बोट में से उतरकर हल्की-सी चढ़ाई पार कर के बाजार की ओर जाने पर साइकलरिक्षा मिलती है, पर हम अभी बाहर उतरे ही थे कि कुछ लोग आ गए, जिनको पिनाकीदा ने बताया कि हमें 'सेनबाड़ी' जाना है, रिक्षा बुला दीजिए। पाँच मिनट में पाँच रिक्षाएँ आ गईं। बाजार में होकर दो-एक कि.मी. गाँव में और पक्की सड़क से होकर फिर कच्ची ऊबड़-खाबड़ सड़क पर आ गए।

अचानक रिक्षा खड़ी हो गई। अब आगे पैदल जाना होगा। हम कुछ ही कदम आगे बढ़े थे कि दिखाई पड़ा दाहिनी ओर वह शिवमन्दिर जहाँ हररोज कीर्तन होता था, और माँ के यहाँ सुनाई देता था, और जहाँ से कीर्तनियों का दल माँ के पास कीर्तन करने के लिये आता था।

मन्दिर प्राचीन है, सीधा खड़ा हुआ लाल रंग का शिखर है। बाहर से कुछ भग्नावस्था में है। बहुत एकान्त स्थान है। दाहिनी ओर तालाब है, बाईं ओर नहर है। बाबरीकांड के समय इस मन्दिर पर आक्रमण किया गया था, लिंग को हटा दिया गया था। बाद में वाराणसी आश्रम की सहायता से पिनाकीदा ने नवीन लिंग की प्रतिष्ठा की है।

मन्दिर की पृष्ठभूमि में सबकी तसवीरें खींची गईं। अब हम आगे बढ़े। मन्दिर को दाहिनी ओर रखकर सीधी कच्ची सड़क पर

थोड़ा-सा आगे जा कर दाहिने मोड़ लिया और तुरंत देखा जयशंकर सेन का मकान। हल्के पीले रंग का पक्का मकान है, कुछ बड़ा-सा, ऊपर मजला नहीं है, तीन arches मकान के आगेवाले ओर पीछेवाले हिस्से में हैं। आगे-पीछे से मकान एक जैसा ही दिखता है। आगे-पीछे दोनों ओर काफ़ी बड़ा compound है जिसमें दोनों ओर चटाई के छोटे छोटे घर हैं, जिनके भीतर शायद दो-दो कमरे ही हैं।

सेनबाड़ी आने से पहले हम जब शिवमन्दिर के सामने खड़े थे, तब कोई आदमी जाकर सेनबाड़ी में रहनेवाले श्री ध्रुवकुमार रॉय को बुला लाया। इनका फोन नंबर कनखल के पाटुनदा ने मुझे दिया था। वे हमको अपने साथ ले गए। पूछताछ करने पर पता चला कि वे माँ के बारे में प्रायः कुछ भी नहीं जानते थे। तब हमने खुद ही 'सर्वे' करना शुरू किया। आज भी ठीक वैसा ही परिवेश है जैसा कि पुस्तक में लिखा है–नहर, सड़क, तालाब, मन्दिर, बाँस की झाड़ी...

एक तरफ मिट्टी के ढेर से बना हुआ छोटा-सा टीले जैसा कुछ था, जिसके नीचे से पुरानी भग्न इंटें और पत्थर दिख रहे थे। पूछने पर मालूम पड़ा कि यह कभी 'भोगेर रान्नाघर' रहा था, अर्थात् ठाकुर के लिये भोग बनाने का रसोईघर। जयशंकर सेन के इस घर में जब कीर्तन हुआ था, तब भोलानाथजी ने माँ को रसोई बनाने को कहा था। माँ रसोई की ओर जाती थीं किन्तु भाव में थीं, धीरे धीरे भावावस्था होने लगी और माँ का शरीर अवश हो कर गिर पड़ा। भावावस्था में आँसू की धारा पिचकारी की तरह गिरती थी, वस्त्र गीले हो जाते थे, शरीर एकदम नर्म मुलायम हो जाता था, ठंडा पड़ जाता

था, भीतर की ग्रंथियाँ खुल जाती थीं, शरीर में जो कंपन होता था उसके कारण शरीर भूमि से ऊपर उठ जाता था। इतने अधिक वर्णन हैं कि सब लिखना सम्भव नहीं है।

हम मकान के इर्द गिर्द घूमे, ऊपर जाकर भीतर झाँक कर देखा। इसके होल में एक बार कीर्तन हुआ था, तब माँ घर के पीछे खटिया पर बैठी थीं, भावावस्था में आधा शरीर नीचे गिर गया था।

भूमि-स्पर्श करके हम शिवमन्दिर की दिशा में गए। एक पढ़ालिखा युवक वहाँ खड़ा था, जो पिनाकीदा का परिचित था। उसने जानकारी दी कि १९४७ में पूर्व पाकिस्तान बन जाने पर जयशंकर सेन अपने परिवार को लेकर भारत चले गए। मकान बेच दिया या यों ही छोड़ दिया, कुछ पता नहीं। उनके चले जाने पर एस. रोय नामके एक साहित्यकार उसमें रहने लगे। अभी जो ध्रुवकुमार हमसे मिले थे, वे उनके पुत्र हैं।

यह युवक हमें अपने घर ले गया। बड़े आग्रह से सबको कोफी पिलाई, पिनाकीदा ने कुछ खाया नहीं था, उनको केले खिलाए गए जिससे हम सब बहुत खुश हुए। इस घर के एक सज्जन ने हमें मधुबाबू की कचहरी के बारे में बताया। मधुबाबू भोलानाथजी के पड़ोसी भी थे और सहकर्मचारी भी थे।

हमारी पाँच रिक्षाओं का काफ़िला उस स्थान पर पहुँचा। बहुत भीड़ जमा हो गई, पास ही में बाजार था। ये लोग चकित होकर हमें देख रहे थे-ये अलग अलग वेशभूषावाले लोग कौन हैं, कहाँ से आए हैं ? पिनाकीदा रिक्षे पर ही बैठे रहे थे। जब हम लौटे तो

एक दृश्य देखकर हमें बड़ी हँसी आ गई। सड़क पर ऊँची रिक्षा में पिनाकीदा बैठे थे, उनको घेरकर बहुत लोग खड़े थे। पिनाकीदा प्रवचन करने की मुद्रा में हमारे बारे में बता रहे थे और लोग चुपचाप विस्मित-से उनकी ओर देख रहे थे।

हमने देखा कि ४-५ एक जैसे दिखनेवाले मकान हैं पीले रंग के। उनमें से जो सबसे पुराना दिख रहा था, उसी में शायद भोलानाथजी बैठते होंगे, यही उनकी कचहरी होगी। तसवीरें खींचकर हम मोटरबोट की ओर चले। आधे घंटे में सूर्यास्त हो गया। शान्त वातावरण, प्रशान्त जलप्रवाह, संध्या की आभा और नीरवता में आज अंतर में कितना कुछ भरकर जा रहे थे! आँखों में आँसू थे। माँ की कृपा से आखिर अष्टग्राम-दर्शन कर ही आए!

अंधेरा हो गया। कुछ लोग वहीं सो गए। हम तीन जन पिनाकीदा के साथ बोट के छप्पर के बाहर खुले आकाश के नीचे बैठकर स्मृति-चारण करने लगे। ऊपर अनगिनत तारे झिलमिला रहे थे, सामने ब्रह्मपुत्र का विशाल पट फैला हुआ था। सब चुप थे।

हमारी मोटरें प्रतीक्षा कर रही थीं। पिनाकीदा ने घर जा कर प्रेमपूर्वक भोजन कराया।

(६)
बाजितपुर

१३-५-०७ वैशाख कृष्ण एकादशी

माँ की बचपन से ही नामकीर्तन सुनकर भावावस्था हो जाती थी। दो-ढाई वर्ष की उम्र में सुलतानपुर मामा के घर पर थीं, तब पड़ोसी के यहाँ कीर्तन सुनते हुए भावसमाधि हुई थी। परन्तु अष्टग्राम में भावदशा लोगों के सामने प्रकट होने लगी।

भोलानाथजी को पुनः ढाका नवाब के यहाँ नौकरी मिली थी बाजितपुर में। यहाँ पर माँ का निवासकाल ७ वर्ष का था। भोलानाथजी जिस घर में रहते थे उसकी दीवालें चटाई की थीं और छप्पर टिन का था। उनके घर के आगे और पीछे एक एक तालाब थे। छोटे तालाब के सामने कोने पर आखिर में उनका घर था। पीछे की ओर का तालाब बड़ा था। तालाब के दोनों किनारों पर आमने-सामने और भी घर थे। सभी के घर इसी प्रकार के थे, बड़े सुपरिटेन्डन्ट का घर तक घास-टिन-चटाई का था।

बाजितपुर में माँ के शरीर में योगक्रियाएँ अपने आप होने लगीं-आसन, प्राणायाम, मुद्रा। झूलन पूर्णिमा की मध्यरात्रि में माँ की स्वतः दीक्षा हुई अर्थात् स्वयं के द्वारा स्वयं की दीक्षा। माँ के शरीर में से ही देवी-देवता प्रकट हुए, सारी सामग्री प्रकट हुई, जो जो आवश्यक था सब हो गया, सभी क्रियाएँ बाह्य और आन्तरिक अपने आप ही हो गईं। साधक की साधना की जितनी अनगिनत असंख्य अवस्थाएं हैं वे सारी की सारी केवल ७ महीनें में होकर समाप्त हो गईं।

माँ की आश्चर्यजनक विचित्र हालत देखकर माँ के ममेरे भाई निशिकान्त भट्टाचार्य एवं भोलानाथजी ने पूछा,"आप कौन हैं ?" माँ ने कहा,"पूर्ण ब्रह्म नारायण" ।

*

यहीं पर माँ ने स्पर्शमात्र से भोलानाथजी को समाधिस्थ किया था, बाद में भोलनाथजी की दीक्षा भी यहीँ पर हुई थी ।

*

ब्राह्मनबाड़िया से बाजितपुर उत्तर-पश्चिम में स्थित है। बाजितपुर की दिशा में ढाका की ओर जानेवाला रास्ता अलग होकर दाहिनी ओर मुड़ जाता है । हम डेढ़ घंटे में वहाँ पहुँच गए । 'बाजितपुर' नाम का साइनबोर्ड पढ़ते ही रोमांच हो गया। पिनाकीदा ने दोनों मोटरें रुकवाईं । कारण पूछने पर पता चला कि उन्होंने किसी को बुलाने का प्रबन्ध कर रखा है। उस सज्जन के आने पर उनका नाम ज्ञात हुआ-श्री तापस चक्रवर्ती । इनका भी फोन नंबर कनखल में पाटुनदा ने मुझे दिया था। वे हमारे साथ कार में बैठे । बाजार की ओर एक जगह गाड़ी रुकवाई । वहाँ से हम सब पैदल चले । ५-७ मिनट में कुछ झोपड़े और दाहिनी ओर के तालाब के पास से गुज़र कर हम एक खाली स्थान पर आए, जो कि सबसे आखिर में एक छोर पर था। उस जगह पर कुछ कुछ दूरी पर, निश्चित दूरी पर छोटे छोटे पेड़ लगाए गए थे । यही वह स्थान था जहाँ माँ का निवास था। सामने एक तालाब था, पीछे की ओर बड़ा तालाब था, कोने पर यह जमीन थी जिस पर भोलानाथजी का घर था। यह ठीक वैसा था जैसा कि पुस्तक में पढ़ा था ।

जिस भूमि पर माँ के श्रीमुख से "पूर्ण ब्रह्म नारायण" निर्गत हुआ, विश्व को आत्मपरिचय दिया, उस पवित्र महीयसी भूमि पर ही हम सचमुच खड़े थे। भूमि को मस्तक स्पर्श कर के सभी ने प्रणाम किया। थोड़ी देर वहीं बैठे रहे - सब अपने अपने चिन्तन में मग्न! तसवीरें भी खींची गईं। वहाँ इकट्ठी हुई जनता से बातचीत भी की।

जाते समय हमने अपने साथ लाये हुए बिस्किट बाँटे। छोटे-बड़े सब ने लिये।

हम सभी मौन थे, भावविभोर थे, किसी ने आपस में कोई बातचीत नहीं की। लौटते समय एक लड़के को नीचे भेजकर बाईं ओर के तालाब से मैंने जल मँगाया। वह अंजलि में भरकर लाया। माँ का स्पर्श प्राप्त उस जल को मस्तक पर छिड़का। बारी बारी से सभी ने मँगवाया, लड़का दो-तीन बार जाकर लाया। सबने छिड़का। हम आठों व्यक्तियों में भाव का ऐक्य था, इसलिये सभी का ऐसे माँ-विषयक कार्यों में तत्परता एवं उत्साह था, परस्पर का पूर्ण सहयोग था।

हमारी गाड़ियाँ जहाँ पर खड़ी थीं, वहीं पास में बाजार था। भोलानाथजी ढ़ाका के नवाब की जिस treasury में काम करते थे वह अब खंडहर हालत में है ऐसा सुना गया था, और उस जमीन के मालिक ने "**श्रीश्री आनन्दमयी कालीमठ**" नाम से कालीमंदिर व शिवमंदिर बनाए हैं, ऊपर टिन का छप्पर बिठाकर। परन्तु हम वहाँ जा न पाए, क्योंकि किसी ने कहा कि ३-४ कि.मी. पैदल जाना होगा। बाद में लौटने पर ज्ञात हुआ कि बहुत नजदीक था। पर हम न जा सके।

तापस चक्रवर्ती हमें अपने घर ले गए। वे वहाँ के प्रतिष्ठित परिवार के हैं, पिनाकीदा के रिश्तेदार हैं। उनके घर पर ठंडा पानी पीकर कुछ देर के लिये बैठे। भोलानाथजी के निवासस्थल की उस भूमि के बारे में बातचीत हुई। पता चला कि उसका मालिक कोई मुसलमान है और वह भूमि आश्रम को (संघ को) बेचने के लिये तैयार है।

*

सुलतानपुर

बाजितपुर से हमने सुलतानपुर की ओर प्रस्थान किया। सुलतानपुर खेओड़ा और ब्राह्मनबाड़िया के बीच में स्थित है। माँ की मामाबाड़ी (मामा का घर) सुलतानपुर में थी। खेओड़ा, सुलतानपुर, विद्याकूट तीनों ही ब्राह्मनबाड़िया जिले में हैं। माँ की माता दिदिमाँ के पिता श्रीरमाकान्त भट्टाचार्य सुलतानपुर के अत्यन्त प्रतिष्ठित जानेमाने पंडित थे। उनका विशाल मकान था। उन दिनों घरों में मिट्टी–गोबर से लिपी–पुती जमीन रहती थी, जिसमें ईंट–पत्थर रहने के कारण बाहर की भूमि से घर का base कुछ ऊपर उठा हुआ रहता था। सुन्दर सुव्यवस्थित चटाइयों की दीवारें और भीतर के विभाजन भी चटाई से बनते थे। ऊपर टिन का या फूस का छप्पर होता था। मकान 'दोचाला', 'चौचाला' या 'आठचाला' होते थे अर्थात् दो, चार या आठ छप्परवाले।

माँ की मामाबाड़ी का वर्णन पढ़ा है—आगे का हिस्सा दो छप्परवाला ओर पीछे का चार छप्परवाला था। घर के सामने घास की lawn थी। बहुत सारे विभिन्न सुगन्धित फूलों के पौधे ओर फलों के वृक्ष आगे भी थे, पीछे भी थे ओर दोनों तरफ भी थे। आगे–

पीछे एक-एक तालाब था। पीछे का तालाब तारा नाम के पौधों से पूरी तरह ढक गया था, इसलिये उसे तारापुकुर कहते थे। आगेवाला तालाब स्वच्छ जल से परिपूर्ण था। माँ उसी में स्नान करती थीं, और वही जल पीने के तथा रसोई के उपयोग में लिया जाता था।

पीछेवाले तारापुकुर के पास मामा की लड़की सुशीला निर्मला को ले कर घूमने जाती थी ओर कहती थी,"इस तालाब में बहुत बड़ी सन्दूक है, उसकी साँकल इतनी बड़ी है कि बाहर निकालकर रखें तो स्तूपाकार ढेर बन जाय। वह साँकल बाहर निकलकर पास में खड़े होनेवाले का पैर 'हुश' कर के खींच कर अंदर ले जाती है, ओर फिर जाने क्या कर देती है, चल जल्दी चल।"

निर्मला ने हँसकर कहा,"सबको क्यों बाँधेगी ? जहाँ पर अन्याय की, असत्य की बात हो, वहाँ तो सब प्रकार के भय होते हैं।"

सुशीला की उम्र निर्मला से कुछ ज्यादा थी। बाद में हमारे आश्रम में वे 'सुशीला माशीमा' नाम से पुकारी जाती थीं। आखिरी वर्षों में उनका संन्यास हुआ था, और कनखल आश्रम में ही उनका शरीर शान्त हुआ था।

मामाबाड़ी के पास ही सुशीला की माँ का मयका था। सुशीला की माँ धनिक परिवार की लड़की थी। ईंटों का बना हुआ पक्का मकान था, जिसके एक हिस्से में गाँव का डाकघर था, और पास ही में उनका अपना शिवमन्दिर था। उस मन्दिर के सामने निर्मला, सुशीला और अन्य बच्चे खेला करते थे। बालिका माँ कभी कभी भावसमाधि में वहीं पर वस्त्र ओढ़कर लेट जाती थीं।

माँ की बाल्यावस्था में एक बार मामा के घर पर पूजा थी। छोटे मामा ने देखा कि निर्मला की कैसी अवस्था हुई है–अपने आप मुख से संस्कृत मन्त्रोच्चारण हो रहे हैं !

कई वर्षों बाद शाहबाग (ढाका) में माँ के मुख से धाराप्रवाह रूप में संस्कृत मन्त्र, बीजमन्त्र एवं स्तोत्र प्रस्फुटित होते थे, जिसके बारे में पंडित गोपीनाथ कविराजजी ने कहा था कि यह प्राचीन संस्कृत है, वेदकाल के प्रारम्भ में वेदों में भी यह भाषा है, यह "देवभाषा" है। बाद में संस्कार किये जाने पर वह संस्कृत कहलाई।

*

बाजितपुर से हम सुलतानपुर गए। ब्राह्मनबाड़िया और खेओड़ा के बीच में सुलतानपुर आता है। बड़ी सड़क से ही दूर मामाबाड़ी के पासवाले, सुशीला की माँ के परिवार के शिवमन्दिर का उन्नत शिखर दिखाई देता है। उन दिनों नाव में बैठकर जानेवालों के लिये भी यह शिखर landmark जैसा था।

गाड़ी को highway पर ही खड़ा कर के हम गाँव की ओर चले। पाँच मिनट में शिवमन्दिर तक पहुँच गए। अष्टग्राम में जो शिवमन्दिर देखा था, उसी शैली का पतला लम्बा शिखर है। मन्दिर बाहर से खंडित है, काफ़ी प्लास्टर उखड़ गया है। बाहर गाय बँधी हुई थी, ओर मन्दिर में कोई लिंग नहीं था, केवल घासफूस भरा हुआ था। आसपास गन्दगी थी, फिर भी स्थान अत्यन्त अद्भुत था। वायुमंडल में 'कुछ' था, विशेषत्व था, सन्ध्याकाल होने को था, वातावरण में शान्ति थी। सोचा, निर्मला की कितनी बाललीलाएँ यहाँ हुई हैं, पुस्तक में पढ़ा है।

थोड़ा-सा आगे बढ़ने पर डाकघर की बची हुई दीवार आई। डाकघर जिस मकान का हिस्सा था, उसका कोई अवशेष नहीं था। उसी सीधी कच्ची सड़क पर आगे चले, अब बाईं ओर तालाब देखा। गाँववालों ने कहा कि,"यह तारापुकुर है", उसी के समान्तर आगे तक सँकरी सड़क है। तुरंत कल्पनाचित्र सामने आया–इसी पर से निर्मला ओर सुशीला चलकर जाती थीं, इसी तालाब में वह सन्दूक और साँकल....!

तारापुकुर मामाबाड़ी के पीछे था। आगेवाला तालाब जिसमें स्वच्छ जल भरा रहता था, वह अब सूख-सा गया है। दोनों तालाबों के बीच में जहाँ मामाबाड़ी थी वहाँ अब खाली जगह है ओर मुसलमान लोग झोंपड़े बाँधकर रहते हैं।

बांग्लादेश में हमारे प्राचीन मन्दिरों की जो जीर्णावस्था देखी, उपेक्षा देखी, दुर्दशा देखी, दुरुपयोग देखा उससे मन भर आया।

सूर्यास्त हो गया है। शान्त नीरवता में माँ की बाललीलाओं का स्मरण किया। इन सारे उपेक्षित स्थानों पर जा कर यह अनुभव हुआ कि हमारी अन्तर्चेतना के जो तन्तु माँ के सम्बन्ध में जुड़ गए हैं, वे इन सर्व स्थानों के साथ भी हमें सूक्ष्म बन्धन में बाँध देते हैं बहुत ही मजबूती से। शरीर रोमांचित हो जाता है, आँखें आंसुओं से भर आती हैं। कहीं भी कोई खास स्थूल इमारत नहीं है, किन्तु माँ के श्रीचरणों के स्पर्श से पूत भूमि है, माँ की लीलाओं से चेतनवन्त भूमि है, वायुमंडल में अद्भुत शक्ति है।

यहाँ भी बिस्किट वितरण कर के हम खेओड़ा जाने को आगे बढ़े। रात का अन्धकार छा गया था।

खेओड़ा

मन ऐसा शान्त था कि रास्ते में कोई कुछ नहीं बोल रहा था। खेओड़ा में तब बिजली नहीं थी। इसलिये जब वहाँ पहुँचे तब घोर अंधेरा था। यह भी एक अनुभव था! पास की दूकान से मोमबत्तियाँ खरीदकर दो-तीन व्यक्तियों के बीच एक-एक मोमबत्ती पकड़कर हम आगे बढ़े। ज्योतिबहन को बाजार में ही साइकलरिक्षा मिल गई। उसमें बैठकर वे हमारे पीछे पीछे आईं। अंधेरा होने के कारण उनका रिक्षेवाला हाथों से रिक्षा को खींचकर चल रहा था।

खेओड़ा गाँव के बहुत सारे लोग हमारे पीछे-पीछे आए। काफ़ी भीड़ हो गई। वे लोग ऊबड़-खाबड़ कच्ची सड़क पर तालाबों और झाड़ियों के पास से हमें सावधान करते हुए साथ साथ चल रहे थे। अपने आश्रम को भी हमने कब पार कर लिया पता ही नहीं चला। आखिर दूर से आविर्भाव-स्थान के मन्दिर का आकार दृष्टिगोचर हुआ। अमावस्या को और तीन दिन बाकी थे। रात बहुत अंधेरी थी। कोई बांग्ला में बोला कि पहले से पता होता तो आश्रम से चाभी ले लेते!

मन्दिर के बाहर के फाटक पर ताला बंद था। बीच में से मन्दिर का दर्शन तो हो ही रहा था, क्योंकि मन्दिर में तो दरवाजा ही नहीं है। वेदी का दर्शन भी होता है। चारों ओर पेड़ है, सब कुछ

निःस्तब्ध ! हवा नहीं है । पीछे तालाब का जल भी शान्त है । हमने आश्रम का सन्ध्या-कीर्तन गाना प्रारम्भ किया बाहर खड़े खड़े ही । "ओम् धृतसहजसमाधिम्" और फिर "जय हृदयवासिनी" "माँ माँ माँ माँ" शब्दों के समूहगान से वातावरण "माँ" नाद से गूँज उठा। हम नौ व्यक्ति और हमारे पीछे दाएं-बाएं खेओड़ा गाँव के लोग खड़े हैं। मेरे मन में विचार उठा कि इस समय भावों के ऐसे तरंग वायुमंडल में हैं कि ताला खुले बिना नहीं रहेगा। कीर्तन जोर-शोर से चल रहा था, और तभी किसीने आकर ताला खोल दिया ! "जय माँ जय माँ" के जयघोष के साथ हम सब भीतर घुसे, वेदी के पास जाकर प्रणाम किया ।

बाहर आकर नीता ने हरिलूट की तरह बिस्किट फेंके चारों तरफ। लोगों ने कूद कूद कर लिया ।

जब हम खेओड़ा आ रहे थे, तब शान्त व गम्भीर भाव था, कीर्तन में भक्ति की मधुरता थी, फिर आनन्द ओर सन्तोष लेकर लौटे। जैसे आए थे वैसे ही अंधेरे में चलने लगे। कोई लालटेन लाया था, उसका उजाला बीच बीच में थोड़ा-सा आ जाता था। अंधेरे में कोई गलत रास्ते पर चलने लगा, आवाज़ देकर वापस बुलाया ।

रात को ९-१० के बीच पिनाकीदा के निवास स्थान पर पहुँचे। प्रेमपूर्वक भोजन किया, और करीब १०-३० बजे अपने अपने स्थान पर गए। कल १४ तारीख है, १४ और १५ ढाका जाना है, १६ को यहीं पर वापस आना है ।

* * *

(७)

ढाका

१४-५-०७ **वैशाख कृष्ण १२**

ब्राह्मनबाड़िया से ढाका ९९ कि.मी. है। रास्ता बहुत अच्छा है, इसलिये दो घंटों में पहुँचा जा सकता है।

सुबह पूजा-पाठ आदि से निबटकर हम सामान बाँधने लगे। कुछ सामान यहीं छोड़कर जाने का निर्णय लिया गया है, क्योंकि दो दिन बाद यहीं होकर आखौड़ा सीमाचौकी जाना पड़ेगा। हम सब तैयार थे, पर पिनाकीदा के प्रेमी परिवारजन हमें बगैर भोजन कराए जाने नहीं दे रहे थे। खिलाने का उत्तरदायित्व उनके बेटे पलाश का था। भोजन के बाद दो गाड़ियों (vans) में बँटकर हम दो घंटो में ढाका पहुँच गए। ढाका के सिद्धेश्वरी आश्रम के सेक्रेटरी श्री जयन्त भौमिक ने ढाका के 'नया पल्टन' मुहल्ले में होटेल 'विक्टरी' में हमारा booking कर रखा था। यहाँ से सिद्धेश्वरी आश्रम, शाहबाग एवं रमना तीनों ही समीप थे। ढाका अन्य बड़े शहरों जैसा ही एक शहर है। बांग्लादेश की राजधानी होने के नाते अब अंग्रेजी भाषा का प्रभाव दिखाई पड़ने लगा, किन्तु अत्यन्त अल्प मात्रा में। अंग्रेजी में बोर्ड तो दिखाई देते थे, पर अंग्रेजी भाषा का प्रचलन कम ही था। होटेल में भी लोग बहुत कम अंग्रेजी समझते थे। रिक्षेवाले ओर टेक्सी ड्राइवर सिवा बांग्ला के ओर कोई भाषा न बोलते थे, न समझते थे।

आज हमें बेन्क में डोलर दे कर बांग्लादेश की currency 'टाका' लेनी थी। अभी तक पिनाकीदा ने कहा था कि आवश्यकतानुसार

उन्हीं से हम टाका लेकर खर्च करें, ओर जब ढाका में exchange लेंगे तब उनसे लिये हुए टाका लौटा देंगे। हम आठ व्यक्ति कुल मिलाकर कई हजार टाका उनसे ले चुके थे। पराये देश में कितनी आत्मीयता से उन्होंने हमें सँभाला !

होटेल में सामान रखकर, हाथ-मुँह धोकर, चाय पीकर कुछ ही देर में हम बाहर निकल पड़े।

*

रमना (रमणा)

सबसे पहले हम रमना रेसकोर्स के मैदान की ओर गए। बांग्लादेश के स्वातंत्र्य-युद्ध के समय १९७२ में रमना मैदान में स्थित प्राचीन कालीमन्दिर का तथा उसी के समीपस्थ हमारे आश्रम को पाकिस्तान ने नष्ट कर दिया है। इस समय दोनों में से किसी का भी नामोनिशान नहीं है।

रमना के मैदान में अब टिन का घेरा है जहाँ पर केवल हरे भरे वृक्ष हैं और हरे घास से भरा मैदान है। किसी समय हमारा आश्रम प्राचीन कालीमन्दिर के पास था। उन दिनों में आश्रम का प्रवेशद्वार पूर्व की ओर था, आश्रम में मातृ-आवास, अन्नपूर्णा मन्दिर, नाटमन्दिर, रसोईघर इत्यादि था, बाहर तालाब था जिस पर घाट बना हुआ था। यह तालाब आज भी है, नीचे तक सीढ़ियाँ उतर कर तालाब तक जाया जा सकता है। बाहर हरा मैदान था, जो आज भी है, और जहाँ भाईजी ब्राह्ममुहूर्त में आ कर प्रतिदिन भोलानाथजी व दिदि के कहने से माँ को चहलकदमी के लिये ले जाते थे। भाईजी दूर खड़े रहते थे, माँ चलती थीं।

बांग्लादेश की सरकार ने उस भूमि पर अपने देश की स्वतंत्रता का स्मारक खड़ा करने का निर्णय किया है, इसलिये अन्दर की मूल आश्रम की भूमि के बदले में बाहर की कुछ भूमि आश्रम को प्रदान कर दी गई है। ढाका के भक्तों द्वारा उस पर **"श्रीश्री माता आनन्दमयी आश्रम"** नाम लिखा गया है।

माँ ने बताया था कि भोलानाथजी की पूर्वजन्म की यह साधनास्थली है, वहाँ पर जो गोपाल ठाकुर का घर था वही पूर्व जन्म में भोलानाथजी का था, और रमना आश्रम की भूमि पर अनेक साधकों की समाधियाँ थीं, उच्च कोटि के तपस्वीओं की यह तपस्यास्थली थी।

माँ का **सर्वप्रथम आश्रम** भक्तों ने सिद्धेश्वरी में बनाया और द्वितीय आश्रम भाईजी के आग्रह से भक्तों ने १९२९ में रमना में बनाया। माँ के जन्मोत्सव के अवसर पर इसका उद्घाटन किया गया। रमना आश्रम में ही मातृवन्दनास्तोत्र "जय हृदयवासिनी" भाईजी के मानसपटल पर उत्पन्न हुआ था।

शाहबाग

१९२४ में माँ की २८ वर्ष की वय में भोलनाथजी को ढाका के नवाब के शाहबाग बगीचे में मेनेजर की नौकरी मिली। शाहबाग इतना विस्तृत था कि उसके अधिकतर हिस्से में जंगल बन गया था। थोड़े-से हिस्से में सही रूप में बगीचा था। इसी बगीचे में भोलनाथजी का निवासगृह, अलग रसोईघर, पूजाघर एवं और कुछ अन्य छोटे छोटे मकान-दालान, फव्वारे, हौज, फलों के व फूलों के बगीचे और lawn

इत्यादि था। नवाब के समय का एक विशाल जलसाघर या नाचघर था, जो कि माँ के आगमन के बाद शीघ्र ही भक्तों का कीर्तनघर बन गया। भक्तगण वहीं कीर्तन करते। उसकी बाहर की ओर दोनों दिशाओं में पूर्व-पश्चिम एक-एक 'गोलघर' थे। कीर्तन के समय कभीकभार माँ नाचघर में बैठती थीं, पर अधिकतर गोलघर में महिलाओं के साथ ही बैठतीं। यहीं कीर्तन के उद्दीपन में माँ की उत्कृष्ट भावावस्था होती थी और माँ नाचघर में प्रवेश करती थीं। दिदि की डायरी में उन अवस्थाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन है – माँ का शरीर जैसे हवा में पत्ता उड़ता है वैसे भूमि पर ऐसी त्वरित गति से घूमता था कि शरीर का स्पष्ट आकार भी दिखाई नहीं देता था, खड़ी हुई अवस्था में भी जब शरीर चक्राकार घूमता तब माँ के चरण भूमिस्पर्श नहीं करते थे। बाहर एक आरब फकीर की दरगाह के पास जा कर माँ ने कुरान की आयतें बोलकर नामज़ पढ़ी थी उसी देहभंगि में। इसके उपरान्त नाचघर के पास माँ के घर के सामने एक तालाब था गोल कुंडाकार, जिसके चारों पार्श्वों में 'झाउ' के पेड़ थे, पश्चिम की ओर पूजाघर था जिसके एक कोने में बकुलवृक्ष था। उसके फूलों से जमीन ढकी रहती थी। माँ कभी कभी उस पेड़ के पास जाती थीं। इसके पास एक और झाउ पेड़ था। भावावस्था में माँ कभी कभी उसके पास बैठी रहतीं थीं। उसी पेड़ को जब काटा गया तब देखा गया कि वह चन्दन बन गया था, ओर उसकी कितनी डालियाँ कितने भक्त ले गये, पूजा में चन्दन की तरह घिसकर उसका उपयोग किया गया। एक टुकड़ा लाकर माँ को भी दिखाया गया था।

एक हौज वेगमों के लिये था जो जलपूर्ण था, और दूसरा खाली था। इन सभी स्थानों पर माँ की लीलाएँ हुई थीं। भाईजी

(ज्योतिश्चन्द्र राय) प्रथम बार माँ के दर्शन करने के बाद एक साल तक दुबारा नहीं आए। वे समीपस्थ गुरुद्वारे में जा कर कभी कभी दूर से माँ के दर्शन करते थे। शाहबाग में माँ के शरीर में क्रियादि एवं भावावस्था की तीव्रता अब तीव्रतम हो गई थीं, और फिर धीरे धीरे माँ लीला समेटकर जनसमूह के मध्य अवगुंठन का त्याग कर के आने लगीं। माँ की ख्याति, माँ का दिव्य आकर्षण चारों ओर विस्तरित हो गया।

शाहबाग में रहते ही सामने सिद्धेश्वरी-आश्रम बना, तत्पश्चात् रमना का।

१९३२ तक ढाका में निवास करने के बाद माँ किसी को कुछ भी कहे बिना भोलानाथजी व भाईजी को साथ लेकर देहरादून के पास रायपुर नामक गाँव में गईं, भग्न शिवमन्दिर में निवास किया। इसी मन्दिर को सूक्ष्म में देखकर माँ ने भोलानाथजी को उसके बारे में बताया था। १९३२ से माँ का अनवरत भ्रमण प्रारम्भ हुआ। भारत में भक्तों द्वारा अनेक आश्रम बनाए गए इस आशा से कि माँ आश्रम में आकर रहेंगी ओर दर्शन प्राप्त होते रहेंगे।

*

रमना-भूमिदर्शन कर के हम शाहबाग की ओर चले। पहले के दिनों में रमना से शाहबाग पैदल जाया जा सकता था। बीच में इमारतें नहीं थीं, मैदान और गहन झाड़ियाँ थीं, पेड़ थे।

अब हम ढाका के ट्राफिक से गुज़र कर ढाका युनिवर्सिटी की Arts College की ओर बढ़े। शाहबाग गार्डन अब युनिवर्सिटी का हिस्सा बन गया है। हमने युनिवर्सिटी के फाटक से अंदर प्रवेश

किया। ऐसा लगा कि शाहबाग का असली फाटक यही होगा। भीतर जाते समय देखा कि दाहिनी ओर बांग्लादेश के प्रसिद्ध शायर (नज़रुल ?) की मज़ार की बड़ी-सी इमारत खड़ी है। कई लोग गलती से उसे शाहबाग के फकीर की दरगाह समझते हैं।

जरा-सा आगे बढ़ने पर दूर ही से दाहिनी ओर भव्य 'नाचघर' और उससे संलग्न दो 'गोलघर' दृष्टिगोचर हुए।

हम नीचे उतरे। दूर से भी ओर निकट से भी ये तीनों इमारतें अत्यन्त भव्य, सुन्दर, रोमांचक दिखाई देती हैं। मुस्लीम शैली का हल्के पीले रंग का arches वाला नाचघर है। माँ जब यहाँ रहती थीं तब ये सारे arches बीच में से खुले थे, अब उनके प्रवेश को दीवार बनाकर बंद कर दिया गया है। अभी भी उस पुराने दृश्य का आभास मिलता है। दोनों गोलघरों के बाहर विशाल वृक्ष हैं – कटहल, नीम ओर आम जैसे, जो हमें बताया गया कि नवाब के समय के हैं अर्थात् माँ यहाँ थीं तब के। भीतर जाकर देखा कि नाचघर की आधी फर्श काले व सफेद संगमरमर की है। माँ ने भी स्वमुख से कभी यह बताया था। गोलघरों के भीतर झाँककर देखा तो सामान भरा हुआ था ओर सफ़ाई नहीं की गई थी। काफ़ी अस्वच्छ बनाकर रखा था। नाचघर भी अब canteen में बदल जाने से आमिष भोजन की दुर्गन्ध आती है। जो गोलघर सड़क की ओर है उसमें माँ कभी कभी रात्रिवास किया करती थीं।

ऋषिकेश के 'शिवानन्द आश्रम' के 'दिव्य जीवन संघ' के अध्यक्ष आदरणीय स्वामी चिदानन्दजी महाराज की माँ के प्रति अनन्य श्रद्धा थी। वे स्वयं माँ की लीला के इन स्थानों का दर्शन करने हेतु

बांग्लादेश गए थे। जब उन्होंने शाहबाग के गोलघर की ऐसी दुर्दशा देखी, तब भावावेश में आकर अपने हाथों से सफ़ाई करने लगे थे।

अन्य कोई पुराना दालान, मकान, हौज, फव्वारे दिखाई नहीं दिये। भाईजी जिस गुरुद्वारे में खड़े रहकर माँ के दर्शन किया करते थे, वह हमने दूर से देखा। बीच में शाहबाग की दीवार (compound wall) है।

नाचघर के निकट एक पेड़ के तले में एक दरगाह है जो आरब फ़कीर के शिष्य की है। श्री अमूल्यकुमार दत्तगुप्त की पुस्तक में यह लिखा है कि वे माँ के साथ रमना से शाहबाग-दर्शन के लिये गए थे, एक बकुलवृक्ष के नीचे फकीर के शिष्य की दरगाह देखी थी। लिखते हैं कि उसके ऊपर छत नहीं है, वृक्ष ही उसे छाया देते हैं। हमने वह देखी, किन्तु जिस फकीर की दरगाह के पास माँ ने नमाज़ पढ़ी थी, वह स्थान हम नहीं खोज पाए।

नवाबों का विलासक्षेत्र होने के बावजूद शाहबाग आध्यात्मिकता से ओतप्रतो है। माँ ने कहा था कि आरब फ़कीर की दरगाह के पासवाली झाड़ी से धूप की सुगन्ध निकलती थी। इस फ़कीर को शाहबाग आने से पहले माँ ने देखा था। किसे पूर्णता दान करने के लिये माँ कब कहाँ क्या लीला करती हैं, माँ ही जानती हैं।

शाहबाग से लौटते समय मैंने मन में निश्चय किया कि दुबारा अवश्य आऊँगी जब लोग कम हों, कॉलेज बंद हो, और बाहर से लोगों की अनुपस्थिति में शांति से मौन रहकर इस स्थल की सूक्ष्म तरंगें (vibrations) आत्मसात् कर सकूँ।

*

अब हमें बेन्क में exchange लेने के लिये जाना था। पिनाकीदा साथ में थे। वे अपने किसी रिश्तेदार के यहाँ ठहरे थे! हम आठ व्यक्तियों को टाका लेने में काफ़ी विलम्ब हुआ। भारतीय १०० रुपये के ११४ टाका मिलते हैं। हमने प्रति व्यक्ति करीब २५० से ३०० डोलर बदलकर टाका लिया।

इन सब कामों से निपटकर जब बाहर आए तो जोरों की भूख लगी थी। बाहर कहीं भी खाना मुश्किल था, इस देश की ब्रेड में भी अंडे रहते हैं, non-veg तो हर जगह मिलता है। हमने अपने साथ लाए हुए खाने के सामान व चाय से काम चला लिया। बांग्लादेश के यात्री को ये तीन बातें अवश्य याद रखनी चाहिए :

(१) खाने की सूखी चीजें (नाश्ता) काफ़ी मात्रा में साथ रखनी चाहिए और खुद चावल-सब्जी या खिचड़ी बनाने के लिये कूकर व अन्य सामान भी रखना आवश्यक है।

(२) पीने के पानी की mineral water बोतलों का ही उपयोग करना चाहिए।

(३) पढ़े लिखे लोग, यहाँ तक कि ढाका युनिवर्सिटी के विद्यार्थी भी अंग्रेजी नहीं बोल पाते, हिन्दी का तो प्रश्न ही नहीं उठता! केवल बांग्ला ही बांग्ला का प्रचलन है, अतः दोभाषी (interpreter) को साथ में रखना चाहिए।

* * *

(८)

सिद्धेश्वरी (ढाका)

१५-५-०७ वैशाख कृष्ण त्रयोदशी

समस्त बंगप्रदेश शक्ति-उपासना के लिये विशेष प्रख्यात है। बांग्लादेश के ढाका में भी शहर के बाहर प्राचीन कालीमन्दिर में सिद्धेश्वरी काली मूर्ति है। १९७२ के पाकिस्तान युद्ध के समय भी यह मूर्ति एवं मन्दिर अखंडित रहे। माँ के श्रीमुख से 'सिद्धेश्वरी' नाम प्रकट हुआ था। शाहबाग में रहते हुए कई बार माँ भोलानाथजी के साथ रमना कालीमन्दिर में आरती के समय जाती थीं। तब रमना आश्रम नहीं बना था। शाहबाग में एक दिन माँ ने भोलानाथजी से पूछा, "सिद्धेश्वरीतला कहाँ है?" सिद्धेश्वरीतला माने सिद्धेश्वरी का वृक्ष जिसे माँ ने सूक्ष्म में देखा था। किसी को कुछ ज्ञात न था। एक दिन भोलानाथजी के मित्र बाउलबाबू जो माँ को माँदेवी मानते थे, वे माँ को और भोलानाथजी को रमना के निकट गाढ़ जंगल में वृक्षों से घिरे हुए सिद्धेश्वरी कालीमन्दिर में ले गये, जहाँ माँ का देखा हुआ वह वृक्ष था। उस वृक्ष को 'तीनतिड़ी' कहा जाता था, क्योंकि उसमें वटवृक्ष, पीपल और चन्दन-तीन वृक्ष एक साथ जुड़े हुए थे। कहते हैं कि इस वृक्ष से एक ज्योति निकलकर कालीमूर्ति में समा गई थी।

सिद्धेश्वरी के विषय में माँ ने यह कहा था कि यह साधकों का साधनास्थल था, और प्रति पाँच हजार पाँचसौ वर्ष पर यहाँ विशेष विशेष उच्च कोटि के साधक आते थे। सुना जाता है कि आद्य शंकराचार्य आए थे, गुरुनानक भी आए थे। सर्वप्रथम १९२४ में माँ का भोलानाथजी के साथ यहाँ आगमन हुआ था।

माँ ने कहा था, "बाउल ने कहा कि उस वृक्ष में ज्योतिदर्शन होता था, और उसमें सिद्धेश्वरी काली का ज्योतिरूप में अधिष्ठान दिखाई देता था। उस वृक्ष में से समय समय पर ज्योति मन्दिर में जाती थी, फिर मन्दिर में से पेड़ में आती थी इत्यादि। यह जो ज्योति–ज्योतिर्मयी कालीरूप में प्रतिष्ठित सिद्धेश्वरी नाम की है।"

माँ ने इस मन्दिर के गर्भगृह के बगलवाले कमरे में सात दिन तक निवास किया था। मन्दिर में विशेष कोई आवागमन नहीं था, केवल एक भैरवी (तान्त्रिक साधिका) आया करती थी। माँ की देखभाल के लिये दिन में दादा महाशय ओर रात में भोलानाथजी मन्दिर में रहते थे। माँ कक्ष में अकेली अपने भाव में रहती थीं। मन्दिर के चारों ओर घनघोर जंगल था। वर्षाकाल था, माँ कमरे में थीं, भोलानाथजी रात को मन्दिर–प्रांगण में बैठे रहते या कभी सो जाते, मन्दिर के बाहर नीचे बाउलबाबू सारी रात जागकर बिताते हुए इसी आशा में बैठे रहते कि कोई अद्‌भुत घटना घटित होनेवाली है अवश्य, और मैं उसे देखने से वंचित न रह जाऊँ। किन्तु सातवें दिन जब घटना हुई, तभी बाउलबाबू निद्राधीन थे। सातवें दिन सूर्योदय के पूर्व वर्षा में और अन्धकार में माँ एकाएक मन्दिर के पिछवाड़े की ओर जाने लगीं। भोलानाथजी को संग आने का इशारा किया। माँ जंगल में एक स्थान पर मिट्टी में बैठ गईं, जमीन पर हाथ रखा, हाथ भूमि के भीतर घुसने लगा। मिट्टी नरम थी, माँ का हाथ ऊपर कन्धे तक मिट्टी में दब गया। भोलानाथजी बहुत ही भयभीत हो गए इस आशंका से कि कहीं माँ भूमिप्रवेश न कर जाए। उन्होंने खींचकर माँ का हाथ जैसे ही बाहर निकाला, वैसे ही तुरंत मिट्टी में से लाल रंग का गर्म

पानी फव्वारे की तरह ऊपर उठा। माँ ने भोलानाथजी से हाथ डालने को कहा, तब उनके वैसा करने पर कोई "चीज" निकली जिसे भोलानाथजी ने सामने तालाब में फेंक दिया। जहाँ से रक्त जल निकला था वहाँ गड्ढा हो गया था। उसे मिट्टी से भर दिया गया। बाद में माँ के भक्तों ने माँ के कहने से उस स्थान को चारों ओर से घेर लिया ओर उसी स्थान पर करीब २' × २' की वेदी बनाई गई। स्थान गह्वर जैसा ही रहा। उसमें इतनी छोटी-सी जगह में माँ बैठती थीं ओर लेटती भी थीं। इसी भूमि को खरीद लिया गया और माँ का सिद्धेश्वरी आश्रम यहीं पर भक्तों ने बनाया।

१९२५ में माँ इस वेदी के गह्वर में विराजमान् थीं तब भाईजी ने भोलानाथजी से कहा :

"आज से हम माँ को आनन्दमयी माँ कहेंगे।"

यह हमारे लिये ऐतिहासिक भूमि है।

१९२६ में आश्रम बना और उसी वर्ष की वासन्तीपूजा इस आश्रम में मनाई गई। इसी आश्रम में माँ के श्रीशरीर में समाधि की विभिन्न अवस्थाएं एवं विविध क्रियाएं प्रकट हुई थीं। इस पवित्र आश्रम का प्रत्येक रजकण हमारे लिये तेजपुंज है।

इस विशेष वेदी पर भोलानाथजी के द्वारा शिवलिंग की प्रतिष्ठा की गई। बाद में असत् तत्त्वों के द्वारा उसकी हानि कर दी गई। १९८४ में माँ की इसी वेदी के ऊपर पुनः शिव-प्रतिष्ठा की गई है।

*

हम होटेल पर टॅक्सी के आने की प्रतीक्षा में देर तक बैठे रहे, आखिर रिक्षे में सिद्धेश्वरी की ओर चले ।

सबसे पहले हम सिद्धेश्वरी कालीमन्दिर में गए । यह मन्दिर तथा मन्दिर के पीछे स्थित माँ का आश्रम जिस स्थान पर बना, वह घोर जंगल में था । अब वहाँ बाजार है और तीन ओर से फ्लेटों व मकानों से घिर गया है ।

कालीमन्दिर का भी जीर्णोद्धार कर के उसे नवीन रूप दिया गया है। मन्दिर के सामने विशाल प्रांगण है, जिसे बांग्ला में 'नाटमन्दिर' (hall) कहते हैं । प्रवेश करते ही वह प्राचीन वृक्ष दिखाई देता है "तीनतिड़ी", जिसमें से ज्योति निर्गत हो कर मूर्ति में लय प्राप्त हुई थी । किसी समय माँ ने उस वृक्ष का स्पर्श किया था । हमने भी मस्तक स्पर्श करके प्रणाम किया । गर्भगृह के पहले बाईं ओर माँ का वह छोटा-सा कक्ष अब भी उसी स्थिति में है, केवल सफ़ेद tiles लगा दिये गए हैं । कमरा न तो बड़ा किया गया है न छोटा। रंग जरूर किया गया है । माँ की तसवीरें रखी हुई हैं । कालीमूर्ति के पास भी माँ की तसवीर है ।

*

सिद्धेश्वरी आश्रम

सिद्धेश्वरी कालीमन्दिर से बाहर आकर पीछे की दिशा में कुछ आगे जाने पर दाहिनी ओर हमारा आश्रम है । आश्रम अब तो छोटा-सा है । पहले सामनेवाली जमीन भी हमारे आश्रम की थी, पर उसे

जप्त कर के फ्लेटोंवाले मकान बन गए हैं ऐसा सुनने में आया। इस समय आश्रम में दो कक्ष हैं, एक में वह 'वेदी' है। ऊपर नया construction कार्य हो रहा है। दोनों ही कक्षों में माँ रहती थीं। प्राचीन काल में यह साधकों की भूमि थी। कई समाधियाँ अब भी आश्रम की भूमि के नीचे हैं, दिखाई देती हैं।

'वेदी' के ऊपर शिवलिंग प्रतिष्ठित है। हम लोग तीन ओर बैठ गए। नवीनभाई ने सबकी ओर से पूजा की, सब ने आरती गाई। बार बार 'वेदी' का स्पर्श करके हम ने प्रणाम किया।

आश्रम के पूजारी श्री जीवनलाल गोस्वामी का बहुत सहकार प्राप्त हुआ था। प्रसाद वितरण के बाद जीवन महाराज हमें सामने ही अपने घर पर ले गए। मैं ओर नीता गए थे। अपना फ्लेट दिखाकर बार बार कहते रहे "यह सब माँ की कृपा से है।"

मध्याह्न भोजन में हमें सिद्धेश्वरी काली मन्दिर का प्रसाद पाने का निमन्त्रण मिला था। आश्रम में बैठे रहे। एक-डेढ़ बजे हमें बुलाया गया। मन्दिर में काली विग्रह के सामने ही नीचे बैठकर सबने तृप्ति से प्रसाद ग्रहण किया। मन्दिर में प्रणाम कर के "जय माँ, जय माँ" कहकर हम लौट गए।

*

शाहबाग जाने की इच्छा अधूरी थी। शाम को सात बजे हम सबको सिद्धेश्वरी आश्रम में कमिटी के सदस्यों से मिलने के लिये बुलाया था। उनके काम करने का दिन होने से शाम को ही मिलना सम्भव था ऐसा उन्होंने रजतभाई को बताया था।

हमारे पास बीच में थोड़ा खाली समय था। मैं और ज्योतिबहन साइकलरिक्षे में बैठकर शाहबाग जाने के लिये निकल पड़े। शाम को करीब छः बजे का समय था, इसलिये सोचा था कि कॉलेज बंद होगी, लोग नहीं होंगे। ढाका के शाम के ट्राफिक से बचने के लिये रिक्षेवाला गलियों में से रिक्षा ले जा रहा था। मैंने टूटीफूटी बांग्ला में उसे समझा दिया था कि हमें कहाँ जाना था। फिर से बड़ी सड़क पर आए और तभी रमना आश्रम का स्थान दिखाई पड़ा। अपने आप हाथ जुड़ गए, सिर झुक गया। थोड़ा-सा आगे जाने पर शाहबाग आ पहुँचे। विद्यार्थी तो तब भी थे, लोग कम थे। सोचा था एकान्त होगा। खैर, नीचे उतरकर आँखों में सब कुछ भर लिया-यह नाचघर माँ का कीर्तनस्थल, यह गोलघर...भावावस्था की लीला, ये छायादार विशाल वृक्ष, यह कीर्तनस्वरों से परिव्याप्त वायुमंडल, माँ के श्रीचरणों के विचरण से पावन हुई यह भूमि...शाहबाग सचमुच भव्य है, महत् है, विशेष परिवेशयुक्त है !

शाम को सिद्धेश्वरी आश्रम गए। सब नीचे दरी पर बैठकर हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। माँ की बातें कीं उन्होंने, सिद्धेश्वरी की, शाहबाग की बातें की। हमने सुलतानपुर की बातें कीं-कैसे उन उपेक्षित स्थानों की रक्षा की जाय, कैसे उनका महत्त्व समझाया जा सके उन लोगों को जो कि हिन्दु नहीं हैं, निर्धन हैं, अनपढ़ हैं, साधारण स्वच्छता का भी ख्याल नहीं है जिनको, माँ-विषयक कोई जानकारी नहीं है। कैसी सिद्धभूमि पर वे लोग रहते हैं इसका कुछ पता नहीं है। संघ की ओर से माँ के विषय में जानकारी को बांग्ला में छपवाकर उन-

उन स्थानों पर बाँटना चाहिए। श्रीराम ठाकुर, श्रीरामकृष्ण परमहंस, श्रीशारदा माता आदि के चित्र कहीं कहीं देखे, किन्तु माँ की लीलाभूमि पर कहीं भी माँ का एक भी चित्र नहीं है-सिद्धेश्वरी को छोड़कर !

विद्याकूट, बाजितपुर, खेओड़ा में स्वच्छता देखी थी। माँ का क्या "खयाल" है इन स्थानों की रक्षा के लिये, माँ ही जानती हैं। क्या ये स्थान यों ही काल के गर्त में समा जाएंगे या बच जाएंगे माँ की स्मृति के साथ ? अष्टग्राम का क्या होगा ?

रात को हम छः व्यक्ति पिनाकीदा के साथ ढाका के सुप्रसिद्ध ढाकेश्वरी मन्दिर में दर्शन करने के लिये गए। विशाल मन्दिर है। ढाकेश्वरी देवी ढाका की अधिष्ठात्री है। माँ भी यहाँ आई थीं। माँ के श्रीशरीर में कुछ विशेष क्रिया भी हुई थी। देवी के बाईं ओर के छोटे-से कक्ष में विष्णु भगवान का विग्रह है, अतः सम्भव है ढाकेश्वरी लक्ष्मी का स्वरूप हो। पूजारी ने हमें प्रसाद और साथ में सिन्दूर की डिबिया दी। पिनाकीदा को पूजारी से परिचय था। इस मन्दिर में हिन्दुओं का आना-जाना लगा रहता है। हमसे भी हिन्दु भक्त मिले, बातचीत भी हुई।

(९)

शाहबाग हो कर भारत-प्रत्यावर्तन

रात को कुछ नांश्ता कर के हम सो गए। सुबह पिनाकीदा तैयार होकर आ गए। श्री जयन्त भौमिक अपनी पत्नी तथा अन्य एक सदस्य के साथ हमें विदा करने के लिये आए थे। उनके प्रति धन्यवाद जता कर "जय माँ, जय माँ" कह कर दो गाड़ियों में बँटकर हम पहले शाहबाग गए। सुबह का समय था अतः लोग ज्यादा नहीं थे। स्थान खाली जैसा था। अच्छा लगा।

दो घंटों में पिनाकीदा के घर ब्राह्मनबाड़िया पहुँच गए। भोजन किया, सबने अपना अपना सामान गाड़ियों में रखवाया। हमने पिनाकीदा के लिये ढाका से एक छोटा-सा उपहार खरीदा था जो उनको दिया। अत्यन्त सरल भाव से प्रसन्नता से उन्होंने ग्रहण किया। हम लोगों ने पहले से ही तय कर रखा था कि जैसे ही वे तोहफा खोलेंगे, हम एकसाथ तालियाँ बजाएंगे। निर्दोष बालिशता थी यह! पिनाकीदा भी जोर से हँस पड़े। वातावरण आनन्द से भर गया। पलाश की बेटी को भी हमने छोटा-सा कुछ दिया।

इस ओर पिनाकीदा भी कुछ कम न थे। वे अलमारी खोलकर एक के बाद चीज़ें निकालने लगे ओर हमको देने लगे। उनका पुत्र प्रणव जो वकील है, उसने प्रत्येक को बांग्लादेश का "हलाल साबुन" उपहार में दिया। प्रणव एक सुन्दर गायक है। एक शाम को उन्होंने हमें श्यामासंगीत तथा भक्तकवि रामप्रसाद ओर नज़रुल के गाने सुनाए थे।

अन्त में, पिनाकीदा के पुत्र पलाश ओर पल्लव, पुत्रवधू बनानी का बहुत बहुत शुक्र अदा कर के हम भरे हुए हृदय से विदा हुए। प्रणव हमारे साथ आखौड़ा सीमाचौकी तक आ रहा था, पिनाकीदा तो थे ही। आधे-पौने घंटे में चेकपोस्ट पहुँच गए। पिनाकीदा ने पहले की तरह हम सबके पासपोर्ट ले कर बांग्लादेश सीमा की सारी विधि पूर्ण कर दी।

पिनाकीदा ने एक दिन मुझसे कहा था कि, "आप लोग जैसा आज तक कोई नहीं आया है।"

सजल नयनों से हमने "जय माँ" कहकर उन दोनों से विदा माँगी, ओर भारत की सीमा में चेकपोस्ट में दाखिल होने से पहले फिर से हाथ हिला हिला कर, "जय माँ, जय माँ" थोड़ी देर तक करते रहे। वे भी हाथ हिलाते हुए खड़े रहे जब तक कि हम वहाँ से चले न गए।

ऋणानुबन्ध ही सम्बन्धों का कारण है, सच है, किन्तु यहाँ पर तो माँ हमारे बीच थीं। माँ की भक्ति-प्रेम के बन्धनों से भारत के हम और बांग्लादेश के वे लोग बँधे हुए थे।

माँ ने सुन्दर रूप से हमारी यात्रा सफल कराई। जय माँ।

*

आखौड़ा से आगरतला आश्रम जाकर बाहर ही से बन्द मन्दिर को प्रणाम कर के, श्री राय को उनके घर के बाहर मिलकर एरपोर्ट गए। आगड़पाड़ा आश्रम में ठहरे।

सेक्रेटरी दिलीपदा ने प्रत्येक को प्लास्टीक के बेग में एक वस्त्र (साड़ी या धोती), रेशमी कपड़े पर माँ का चित्र, सिन्दूर की डिबिया, मेवा-प्रसाद आदि आदरसहित दिया। दो दिनों में सब अपनी अपनी अनुकूलतानुसार अपने अपने स्थान को लौट गए। मातृभक्त श्रीसपन गांगुली ने अपनी कार भेजकर कई बार हमारी सहायता की।

यात्रा के पहले कुछ लोगों का पूर्वग्रह था कि वहाँ पानी की तकलीफ है, सुना था, और भी कई संशय थे। इस यात्रा की पूर्णता पर यह निष्कर्ष निकलता हैं कि "माँ" नाम ले कर आगे बढ़ते ही जाना चाहिए।

उपनिषद् का वाक्य है –

सोये हुए का भाग्य सोया रहता है, बैठे हुए का बैठा रहता है, खड़े हुए का खड़ा रहता है ओर चलनेवाले का चलता रहता है- "चराति चरतो भगः"।

सुप्तावस्था में कलियुग, बैठने में द्वापर, खड़े रहने में त्रेता ओर चलने में सत्युग है।

चलते रहने से मधु मिलता है-"चरन्वै मधु विन्दति" अतः "चरैवेति चरैवेति" चलते रहो, चलते रहो।

जहाँ जहाँ माँ का स्मरण है, माँ सदैव हैं ही। वह तो सर्वव्यापिनी है, चाहे स्मरण करो या न करो, माँ हैं, माँ हैं, माँ हैं।

माँ की वाणी है :

"माँ है, किसकी चिन्ता ?"

"अकेला ? अकेला कहाँ ? विदेश में (संसार में) बन्धु क्या परम बन्धु को छोड़कर ?"

"मैं तो तुम लोगों को छोड़कर जाती नहीं, मैं तो तुम लोगों के पास ही हूँ ।"

"सर्व रूप में सर्व भाव में वे ही तो हैं । जब जो होता है, वे ही कराते हैं, वे ही करते हैं, वे ही सुनते हैं, वे ही सुनाते हैं । सब विषय में केवल उन पर निर्भर करना ।"

"जानकर रखो – तुम लोगों की बात मुझे हर समय याद रहती है ।"

"यह शरीर तो हर समय कहता है एक आत्मा । इसीलिये अलग और-दूरत्व का प्रश्न कहाँ ?"

॥ जय माँ ॥

* * *

INDIA
(TIRUPUR)
TO AGARTALA
ASHTAGRAM
BRAHMANBADIA
KASBA
BAJITPUR
SULTANPUR
VIDYAKUT
KHEORA
CHALNA
COMILLA
DHAKA
BANGLADESH